माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य संकलन 'हिमतरंगिनी' का एक आलोचनात्मक अध्ययन

(एम.फ़िल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक
प्रो० केदार नाथ सिंह

शोध-छात्रा
मेनका श्रीवास्तव

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
1999

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067. INDIA

Centre of Indian Languages

Dated: 21/7/99

DECLARATION

I declare that the material in this dissertation entitled **"MAKHAN LAL CHATURVEDI KE KAVYA SANKALAN HIMTARANGINI KA EK ALOCHNATAMAK ADHYAYAN"** submitted by me is original research work and has not been previously submitted for any other degree of this or any other University/Institution.

Menka Srivastava
(Menka Srivastava)
Name of the Scholar

Prof. Kedarnath Singh
Supervisor
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Naseer Ahmad Khan
Chairperson
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM : JAYENU; TEL. : (91-011) 6107676, 6167557 Extn. 2217, Fax : (91-011) 6165886, 6106025

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	एक से दस
अध्याय - 1	1 - 25
हिमतरंगिनी : युगीन सन्दर्भों में	
अध्याय - 2	26 - 66
`हिमतरंगिनी` में स्वच्छंदतावाद एवं प्रगतिशील तत्व	
अध्याय - 3	67 - 90
`हिमतरंगिनी` में सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता	
अध्याय - 4	91 - 114
काव्य-कला की विशिष्टताएँ (भाषा-शैली, गीतितत्व एवं अन्य)	
उपसंहार	115 - 119
ग्रंथानुक्रमणिका	120 - 122

भूमिका

'रण-वेदी पर, बलि-वेदी पर, श्रम वेदी पर जहां रहें
लेकर शीश हथेली पर उठ आये बोलो कहां रहें ?'

(रचनावली - 7, पृ0 18)

ऐसे ओजस्वी पंक्तियों को रचने वाले कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने एक वीर सेनानी की भांति अपना रास्ता चुन ही लियाथा, यह बताते हुए कि -

'मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक
'मातृभूमि' पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक ।'

(रचनावली - 6, पृ0 80)

यहां कवि अपने आपको अभिव्यक्त करता है । यह पुष्प और उसकी अभिलाषा कवि से अलग नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व का आइना है ।

वस्तुत: कवि माखनलाल जी का समय राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल का था । ये उस परतंत्र भारत के कवि थे जिसमें स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए मध्यम वर्ग सक्रिय हो उठा था । ये 'द्विवेदी काल'से ही लिख रहे थे । इनकी रचनाओं का काल 1904-1964 ई0 तक है । इन साठ वर्ष के लम्बे समय में इनकी विभिन्न रचनाएं हैं - अठारह, जिनमें दस काव्य संग्रह हैं । ये रचनाएं हैं -- (1) हिमकिरीटिनी (1943), (2) हिम-तरंगिनी (1949), (3) माता (1951), (4) युगचरण (1956), (5) समर्पण (1956), (6) आधुनिक कवि (भाग छ:) (1960), (7) मरण ज्वार (1963), (8) वेणु लो गूंजे धरा (1960), (9) बीजुरी काजल ओंज रही (1964), (10) धूम्र-वलय (1980) - काव्य संग्रह तथा इनकी अन्य कृतियां हैं -- (1) कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक) (1918), (2)साहित्य देवता (निबन्ध - 1943), (3) कला का अनुवाद (कहानी - 1954), (4) अमीर इरादे : गरीब इरादे (निबन्ध - 1960), (5) समय के पांव (संस्मरण - 1962), (6) चिंतक की लाचारी (भाषण - 1965), (7) रंगों की बोली (निबन्ध - 1932), (8) पांव-पांव (निबन्ध - 1980)।

(माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग 10 से (सम्पादक श्रीकान्त जोशी) 1983)

इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता अचानक नहीं गूंजी थी । परतंत्र भारत और इस गुलामी में जकड़े जन-जीवन ने इन्हें काफी संवेदनशील बना दिया । परिणामस्वरूप ये राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने को उद्धत हो उठे । इस सक्रियता के पीछे जनसामान्य से आत्मीयता और फिर राष्ट्र के प्रति समर्पण की प्रबल भावना थी । उनकी आत्मीयता किसी एक चीज़ से नहीं जुड़ी है, बल्कि विश्व व्यापी दृष्टि सहेजती हुई ग्रामीण जीवन तक की टोह लेती है। उनकी आत्मीयता उनके आराध्य श्याम में, प्रकृति में, जनसामान्य में यानी सर्वत्र दिखाई देती है । राष्ट्र के लिए बलिदान और समर्पण बिना आत्मीयता के सम्भव नहीं । तभी तो कृष्ण की मुरली की मोहक तान से उन्होंने `रण-भेरी` ध्वनि की अपेक्षा की --

`किंतु आज तो इस मुरली को रणभेरी डंका कर लो ।`

(रचनावली-6 से)

या फिर वे कहते हैं --

`वेणु लो गूंजे धरा मेरे सलौने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणि बांधी है ।`

(रचनावली - 6 से)

इतना ही नहीं `रामनवमी` शीर्षक कविता में वे कहते हैं --

`पधारो एक बार फिर सुनें, धनुष की अद्भुत टंकार ।`

अर्थात् कविता की विषय-वस्तु चाहे जो हो, उसमें राष्ट्रीय भावना का पुट लगभग समाया ही मिलेगा । चाहे वह प्रकृति-चित्रण ही क्यों न हो । उनकी कविता `धरती तुझ से बोल रही है` में बड़ी ही मार्मिक पंक्तियां देखने को मिलती हैं --

`रे इतिहास फेंक सत्ताक्ष वाली वह तलवार पुरानी,
आज गरीबी की ज्वाला मय सांसों पर चढ़ने दे पानी ।`

(रचनावली - 6, पृ० २०6)

या फिर `कुलवधु का चरखा`, `और संदेशा तुम्हारा वह उठा है` तथा `पत्तों में तांबा` आदि कविताएं इस तथ्य को सिद्ध करती हैं । साठ साल की लम्बी अवधि की कविताओं का बहुत बड़ा हिस्सा जेल में, जेल के बाहर समय-समय पर तथा राष्ट्रीय प्रसंगों पर लिखी गई हैं । गांधी जी तथा अन्य नेताओं पर भी उनकी कविताएं हैं । तिलक की मृत्यु पर एक कविता में उनकी संवेदना कुछ यों झलकती है --

`वज्रपात । मर मिटे हाय हम। रोने दो संहार हुआ,
कसक कलेजे काढ़, दुखी हैं, बुरे समय पर वार हुआ ।`
(रत्नावली - 6, पृ0 65)

`बापू` पर लिखी अनेक कविताओं में एक है `बापू का बरस दिन` । इसी तरह नेहरू पर या विद्यार्थी जी की गिरफ्तारी पर और विनोबा जी के ऊपर `भूदान पथी तेरे चरणों पर युग बलि है ` जैसी अनेक कविताएं राष्ट्रीय स्वर से ओत-प्रोत हैं । राष्ट्रीयता का स्वर लिये इनकी अनेक कविताएं हैं, जैसे - `वीरव्रती, रावी का तट यमुना का तट, सिपाही, विद्रोही, बलि-पंथी, जवानी, कैदी और कोकिला, जलियांवाला की वेदी` इत्यादि ।

इनकी राष्ट्रीय कविताओं की भी अपनी विशेषताएं हैं, जिससे वे अपने समकालीन कवियों से अलग दिखते हैं । उनकेहृदय में अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध क्रोध व विद्रोह है और वे खुल कर व्यक्त करते हैं --

`क्या देख न सकती जंजीरों का गहना ?
हथकड़ियां क्यों यह ब्रिटिश राज का गहना ।`
(रचनावली - 7, पृ0 137)

खुले दिल-दिमाग से वे राष्ट्रीयता की अभिव्यंजना के लिए किसी ऐतिहासिक आख्यान या पौराणिक प्रसंग का सहारा नहीं लेते । सीधे स्पष्ट शब्दों से प्रहार करते हैं । जैसे अंग्रेजी शासन में किसान की स्थिति वे बताते हैं --

'खा रहे हो अन्न ! - मरणासन्न
मेरी हड्डियों का स्वाद कैसा है ?'

यों सीधी-सरल भाषा में प्रहार करने के सलीके में एक अलग ही ओज है । उनकी वाणी एक ओर गांधी की अहिंसा से प्रभावित है तो दूसरी ओर 'आज चीन को मजा चखा दें' जैसी तीक्ष्ण । राष्ट्रीय कर्तव्य की बात कहनेके साथ-साथ उसमें का काव्य और कला पक्ष बराबर टिकाये रखना भी चतुर्वेदी जी की एक अलग विशेषता है ।

उनकी भाषा और शैली के बारे में डा० शर्मा का कहना है - "उनकी वाणी में ओज था, ओज के साथ माधुर्य था, वह भावों में डूबे हुए थे, लेकिन विचारों की ठोस ज़मीन से दूर उठे हुए नहीं थे। उनकी शैली चमत्कारपूर्ण थी, लेकिन कहीं यह न मालूम होता था कि प्रयास कर के चमत्कारों का संग्रह किया है । सब कुछ सुगठित, कलापूर्ण, साथ ही स्वत: स्फूर्त और भावपूर्ण ।"+

वस्तुत: 'एक भारतीय आत्मा' के स्वर में देश-प्रेम के कोमल स्वर, करुण, विकराल तथा अहिंसक एवं क्रांतिमय विविध रहस्यात्मक तथा प्रकृति-गत चित्रों की मधुर अभिव्यंजना है और अपनी विद्रोह की वाणियों में उन्होंने आधुनिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय व्यवस्था एवं साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवेगपूर्ण रोष एवं व्यंग्य प्रकट किया है ।

इन सब से अलग हटकर देखें तो माखनलाल जी के इस काव्य संग्रह 'हिमतरंगिनी' में कवि एक अलग मूड या लहजे में दिखता है - स्वत: उत्पन्न

+ रचनावली, भाग 5 के कवर से

`स्वयंभू` - स्वाभाविक कवि - जो हमारे सामने है और अपने अन्तर्जगत को धीरे - धीरे खोलता है । कभी थका-हारा, कभी खुश, गहन विषाद में डूबा, देश समाज में, अपने एकाकीपन में जीता, प्रकृति और अपने आप को तरुण अवस्था से ढूंढता हुआ एक परिपक्व मोड़ पर ले जानेवाला सहज मर्मज्ञ और जिम्मेदार कवि । स्वयं `हिमतरंगिनी` की कविताओं के बारे में कवि की अपनी राय है कि -` अगर `हिमकिरीटिनी` में देश सम्बन्धी रचनाएं हैं, हिमालय के शिखर की तरह ऊंचे उठने के संभावित प्रयास हैं तो `हिमतरंगिनी` में गंगा की तरह नीचे उतरने की, फिसल पड़ने की और अपनी फिसलन पर अनन्त प्यार किये जाने की अदम्य इच्छा है ।` (रचनावली - 2, पृ0 311 से)

पुन: इस काव्य संग्रह के अन्तर्गत छिपे कवि के मनोभावों को कवि अपने शब्दों में यों उकेरता है -`जिस समय मैं हाथ जोड़कर परिस्थितियों से कहता था कि मुझे कभी-कभी अपना भी रहने दो, `हिमतरंगिनी` मानो ऐसे ही क्षणों के गीतों का संग्रह है । यों जब भी किसी नाले पर, किसी नदी पर या किसी स्थान पर मैं होता, तब जीवन से, बीहड़ और आदर्शवादी जीवन से भी, जब घबराहट होती थी, मैं ऐसे गीतों को लिखा करता था ।` (रचनावली -2, पृ0 311से)

ये कविता को अपने जीवन की लाचारी मानते हैं, उद्रेक और उत्साह नहीं ; क्योंकि इनका मानना है कि -`कला का वह श्रम जहां जीवन के माधुर्य को उकसाता है, वहां वह उस परिश्रम की कीर्ति को दफनाता भी जाता है ।` (वही)

`सामर्थ्य, सीमा, महत्वाकांक्षा, निराशा और आवश्यकता, इनको भावों की अंजलि में संजो कर जब भी अभिमत के चरणों रखना चाहा और उस में जिस तरह कंपकंपी आई, उसी को लिख डालने का यह प्रयास मात्र है - तभी तो -

जो न बन पायी, तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी
तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है,
तो अमर अस्तित्व का अभिमान क्या है',

जैसी पंक्तियों से इस संकलन की शुरुआत करते हैं मालनलाल जी । इसमें ईश्वर की प्रार्थना करतेहुए भी उनके प्रति अंध श्रद्धा नहीं दिखायी कवि ने । जैसा कि आगे वे लिखते हैं --

'तो प्रणय में प्रार्थना का मोह क्यों है ?
तो प्रलय में पतन से विद्रोह क्यों है ?
+ + +
मगन होकर, गगन पर
बिखरी व्यथा बन फुलझड़ी
+ + +
देख ले जग सिसक कर
आराधना सूली चढ़ी ।' (हिमतरंगिनी, पृ० 1-2 से)

वस्तुत: कवि को ईश्वर का उपरोक्त रूप उतना नहीं जंच पाया है जितना कि त्याग करने वाले, लोक कल्याण के लिए विषपान करने वाले ईश्वर का रूपजंचा । तभी तो इसी रूप को आदर्श मानने को तत्पर हैं कवि । अन्त में कवि ने ईश्वर को प्रकृति से जोड़ कर आकाश नहीं, धरती पर ला कर ही सन्तुष्टि का मल्हार गाया है । पुन: कवि स्वयं को राष्ट्रार्पण के लिए उद्धत करते हुए कहते हैं --

'बोल उठ्ठे 'ले चलो,
विषपान की आई घड़ी,
'उठो, बन जाओ हमारे
'गीत की कोमल कड़ी ।' (हिमतरंगिनी, पृ० 2)

अर्थात् भगवान शिव के विषपान का हवाला देकर स्वयं भी राष्ट्रार्पण के लिए विषपान करने को उद्यत कवि अब अपने को उस गीत की कोमल कड़ी बनानेको तैयार है । इसी तरह की आडम्बर रहित भावनाएं इस काव्य संग्रह में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं, जो सहज स्वच्छन्द भावनाओं में डूब कर लिखी गई हैं । आदर्शवादी जीवन से ऊब कर निजी जीवन के मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति गीत के बोल बन कर, फूट पड़े हैं -- ज्यों हिम खण्ड पिघल कर तरंगों में बह चले हों ।

`हिमतरंगिनी` साहित्य अकादमी द्वारा पहली पुरस्कृत (हिन्दी की) कृति है । इस काव्य संकलन का महत्व इन अर्थों में और भी बढ़ जाता है । 1955 ई० में साहित्य अकादमी सम्मान से सम्मानित इस संकलन में 1908 ई० से 1943 ई० तक की कुल 55 कविताएं हैं ।

`हिमतरंगिनी` के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने एवं विभिन्न दृष्टिकोणों से उसकी समीक्षा करने के लिए मैंनेउसमें चार अध्याय बनाए । `हिमतरंगिनी युगीन सन्दर्भों में ` शीर्षक इसका पहला अध्याय है । युगीन संदर्भों में मैंने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक परिस्थितियों को उजागर किया है । आखिर किन परिस्थितियों में `हिमतरंगिनी` की सर्जना हुई व इसकी रचनाएं कहां तक अपने युग का दर्पण साबित हुईं, यही दिखाने की कोशिश रही मेरी ।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक `हिमतरंगिनी में स्वच्छंदतावाद एवं प्रगतिशील तत्व` है । इस अध्याय के अन्तर्गत मैंनेस्वच्छंदतावाद में ही छायावाद, रहस्यवाद आदि पर विचार करते हुए `हिम तरंगिनी` की कविताओं में इन सभी उपस्थित तत्वों को दिखाने की चेष्टा की है । इन विभिन्न वादों के सहारे ही `हिमतरंगिनी` की रचनाओं की प्रकृति पहचान कर उन्हें स्वीकार करने की कोशिश की गई है । फिर प्रगतिवादी

तत्व से संबंधित कविताओं के अंश को प्रमाणित करने की कोशिश की गई है ।

पुन: तीसरे अध्याय `हिमतरंगिनी में सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता` शीर्षक के अन्तर्गत मैंने इन काव्यों के द्वारा कवि के सामाजिक दृष्टि-कोण, राष्ट्रीय चेतना, विश्व बन्धुत्व आदि को दर्शाने की कोशिश की है । किस प्रकार कवि की बाह्य व आन्तरिक दृष्टि परिवार-समाज और राष्ट्र से होती हुई विश्व-बन्धुत्व तक के सफ़र को अपनी चेतना के साथ उजागर करती है, मैंने यही दिखाने की कोशिश की है ।

चतुर्थ अध्याय काव्य-कला की विशिष्टताएं, काव्य-शिल्प, भाषा-सौन्दर्य, गीति तत्व आदि को उजागर करने की कोशिश में लिखी गई है । इसके पहले भूमिका में ही मैंने `मालनलाल चतुर्वेदी जी` के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक संक्षिप्त जानकारी देना उचित समझा है ।

इस लघु शोध को पूरा करने के दरम्यान आए अड़चनों का जिक्र न करना ही बेहतर होगा । कई बार हताश व निराश हो जाती थी मैं, परन्तु उन तमाम लोगों की शुक्रगुजार हूं, जिन्होंने मेरा नैतिक बल बनाए रखा । इस दिशा में सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशक आदरणीय प्रोफेसर केदारनाथ सिंह को धन्यवाद ज्ञापन करना चाहूंगी। जिनसे पर्याप्त सहयोग व सही दिशा-निर्देश की आवश्यकता थी, वह मुझे उनसे भली-भांति मिला ।

इस लघु शोध-प्रबन्ध को लिखने में आदरणीय प्रोफेसर श्रीकान्त जोशी जी ने पत्र द्वारा मेरा दिशा-निर्देशन किया । उनकी इस सहृदयता को मैं कभी भूल नहीं सकती हूं । इनके पत्र की उस पंक्ति से मुझे अपार साहस व नैतिक बल मिला - जिसमें उन्होंने लिखा था - `आपका शोध मात्र एक: एक बन कर न रह जाए - बड़ी कृति बने ।` एक शोध निर्देशक की ही भांति उन्होंने पत्रिकाओं व पुस्तकों की सूची, अग्निहोत्री जी के

व अपने लेख भेज कर मेरी सहायता की । अत: वे धन्यवाद लें ।

भोपाल के डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री जी ने भी मुझे पुस्तकों की जानकारी दी व सहायता के लिए तत्पर रहे । उनके इस सहयोगात्मक भावना को मैं आदर सहित धन्यवाद देती हूं ।

यह लघु शोध-प्रबन्ध लिखते समय माँ - पापा व उनके आदर्श मेरे विचारों के केन्द्र रहे। भैया - दीदी व गिन्नी से मुझे जैसा सहयोग मिला उसका ज़िक्र करना मुश्किल है । फिर मैं अपने दिवंगत चाचा को भी हमेशा याद करती रही जिन्हें मेरी साहित्यिक रुझान पर नाज़ था ।

हालांकि मेरे दोस्तों को धन्यवाद देना एक औपचारिकता लगती है, फिर भी मैं उन सहेलियों व दोस्तों को धन्यवाद देती हूं, जिन्होंने अपने-अपने ढंग से मुझे सहयोग दिया । ऐसे ही दोस्तों में सुमी, येसो, अनिता मिंज, मीना गौतम, अजय, उमाकान्त, कमलाकान्त व राजेश सुमन, पंकज हैं ।

भाटिया जी, जिनके कुशल व अनुभवी हाथों द्वारा इस लघु शोध-प्रबन्ध को टंकण द्वारा अन्तिम परिणति दी गयी, उनको भी हम सब की ओर से धन्यवाद ।

और, अंत में अपने सबसे प्यारे व शालीन मित्र `रमेश` जिसके लिए कुछ ना कहने का अर्थ बहुत कुछ कहना होगा ।

-

अध्याय - एक

'हिमतरंगिनी' : युगीन सन्दर्भों में

इस काव्य संग्रह की कविताओं के सन्दर्भ में स्वयं कवि का कहना है कि - " `पूजा-गीत` कहे जाने की `उम्मीदवार` इन तुकबंदियों की भी यही दुर्गति हुई । ये गीत पूजा रहे नहीं, प्रेम बने नहीं ; अत: यह निर्माल्य शिखर की ऊंचाई से भागते हुए, `निम्नगा` हो गए, और `हिम-तरंगिनी` नाम पा गये । प्रलय की आग होती तो ऊपर को सुलग कर भड़कती, `पानी` थे कि ढालू जमीन ढूंढते चल पड़े नीचे स्तर की ओर ।"[1]

अर्थात् युग के थपेड़ों ने भी उनकी भावनाओं को तरल ही रखा, सूखने न दिया। उनकी कविताओं में भावनाओं की श्रेष्ठता के बावजूद युगीन परिस्थितियां भी मिलती हैं, जो इन कविताओं पर हावी तो नहीं होतीं, किन्तु कविताओं के अस्तित्व के लिए सहायक हो उठी हैं ।

इस काव्य-संग्रह की कविताएं 1908-1943 ई० तक की हैं । अत: इनकी कविताओं में युगीन चेतना के साथ ही उस समय की धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक आदि प्रभाव भी स्पष्ट दिखते हैं । इन 35 सालों के मध्य कवि ने और इनकी कविताओं ने जो-जो परिवेश देखे हैं, वे निम्नलिखित हैं --

युगीन परिस्थितियों को राजनैतिक दृष्टिकोण से देखें तो हम पाएंगे कि - 1905-1918 ई० तक उग्र क्रान्ति के जन्मदाता `तिलक` के नेतृत्व में राजनीति को विस्तार मिला । तिलक जनता में राजनैतिक

---

1. माखनलाल चतुर्वेदी - `हिम तरंगिनी` की भूमिका से, पृ० 6

चेतना जागृत करने के लिए `केसरी` और `मराठा` नामक दो पत्र निकालते थे । `केसरी` के उग्रलेखों के परिणामस्वरूप `तिलक` पर राजद्रोह का मुकदमा चला और 1908 में सजा भी मिली उन्हें । `तिलक` का प्रभाव हमारे कवि `माखनलाल जी` पर न पड़ा हो ऐसा संभव ही नहीं । इनकी इस संग्रह की कविताएं जब लिखी गयीं, उस समय और उसके कुछ वर्ष पहले राजनीति ने अजब-अजब से उतार-चढ़ाव देखे । यथा सन् 1905 में `बंग-भंग आन्दोलन हुआ । 1906 ई० में `दादा भाई नौरोजी` के नेतृत्व में स्वदेशी आन्दोलन का जन्म हुआ। पुन: सन् 1906 में ही मुस्लिम लीग की स्थापना हुई । कांग्रेस की आपसी फूट जैसी घटना भी 1906 ई० में ही घटी । तत्पश्चात् सन् 1909 में `मार्ले मिण्टो सुधार` अधिनियम लागू किया गया । 1914-18 तक के वर्षों को प्रथम विश्व युद्ध ने अपनी चपेट में रखा । `तिलक` और `एनी बेसेन्ट` ने सन् 1919 ई० में होमरूल आन्दोलन चलाया । पुन: कांग्रेस ने फूट समाप्त कर 1916 ई० में `कांग्रेस लीग` समझौता किया । माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार सन् 1919 में हुआ । रोलेक्ट ऐक्ट एवं जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड जैसीजघन्य घटना भी 1919 ई० में ही घटी । परिणाम स्वरूप खिलाफत आन्दोलन को भी वर्ष 1919 ने ही लिया ।

इन सब के पश्चात् 1920-1947 तक के काल को गांधी-युग नाम दिया गया । राजनीति के मंच पर `महात्मा गांधी` लगभग 1916 ई० में आते हैं । `असहयोग आन्दोलन` 1920-22 तक गांधी के नेतृत्व में चला और इस आन्दोलन के बन्द होते ही हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक झगड़े शुरू हो गए, जो 1927 तक चला ।

मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजनदास के नेतृत्व ने 1924 ई० में स्वराज्य दल का उदय किया ।सन् 1927-28 तक साइमन कमीशन के विरोध में बीता।

नेहरू के सभापतित्व में स्वतन्त्रता कांग्रेस का लक्ष्य निर्धारित किया गया 1929 ई० में और 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में मनाया गया । फिर 1930-32 में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' हुआ । सन् 1935 ई० में प्रान्तीय स्वायत्तता हुई और केन्द्र में द्वैध शासन लागू हुआ । 1939 में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया तथा कांग्रेसी मंत्रियों ने आठ प्रान्तों से इस्तीफा दे दिया । गांधी जी के व्यक्तिगत सत्याग्रह के फलस्वरूप हजारों सत्याग्रहियों को जेल जाना पड़ा । तत्पश्चात् सन् 1942 ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू हो गया और 1947 ई० में भारत स्वतन्त्र हुआ ।

इसी समयावधि में माखनलाल जी के जीवन में भी कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हो रही थीं, जिनके विवरण मात्र ही पर्याप्त न होंगे बल्कि उन पर यथासंभव गौर करना उचित होगा । इन्हीं तथ्यों को संभवत: ध्यान में रखते हुए स्वयं कवि की अनुभूति कुछ यों है -'लगता है सामर्थ्य, सीमा, महत्वाकांक्षा, निराशा और आवश्यकता, इन को भावों की अंजली में संजो कर जब भी अभिमत के चरणों पर रखना चाहा और उसमें जिस तरह कंपकंपी आयी, उसी को लिख डालने का यह प्रयास मात्र है ।'[2]

वस्तुत: इनकी कविताओं के काल तक इनकी सक्रिय भूमिका कब और कैसी रही, यही देखने मात्र से इनकी मन:स्थिति का पता चलता है कि कब यह एकान्त और क्षणिक विश्राम चाहते थे जिससे हिमतरंगिनी की सर्जना हो सकी । जीवन के उथल-पुथल भरे माहौल में संवेदना किस

---

2 माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग 2, पृ० 312
(सं० श्रीकान्त जोशी)

गति के साथ प्रवाहित हुई और उसके क्या कारण रहे होंगे आदि अधिकांश बातों की आहट हमें उनके जीवन की इन्हीं गतिविधियों से मिल जाती है । जैसे - 1905 से 1913 ई० तक चतुर्वेदी जी समनगांव में प्राइमरी स्कूल के अध्यापक रहे । उसके बाद उनका प्रवेश पत्रकारिता के क्षेत्र में हुआ 1913 ई० में ही । इसी वर्ष जबलपुर में 13 रुपए मासिक वेतन अध्यापकीय के लिए लेते हुए भी 30 रु० मासिक वेतन पर श्री कालू राम गंगराडे द्वारा सम्पादित `प्रभा` मासिक पत्र के सह-सम्पादक बने । छः अंकों के निकलते ही अध्यापकीय को त्यागपत्र दे दिया इन्होंने । इसके बाद कुछ आर्थिक मजबूरी और प्रेस की अस्तव्यस्तता से `प्रभा` को मात्र 12 अंकों पर ही रोक देने की मजबूरी आ गई, फिर विद्यार्थी जी के सहयोग से 1915 ई० से `प्रभा` को दुबारा शुरू किया गया । विद्यार्थी जी के जेल जाने के बाद उनकी पत्रिका `प्रताप` के सम्पादन का कार्य-भार भी माखनलाल जी ने ही उठाया । 9 अक्टूबर 1923 से मार्च 1928 तक) वर्ष 1914 ने माखनलाल जी के जीवन का सबसे दुखद अंश दिखाया पत्नी की मृत्यु के रूप में । उस समय कवि माखनलाल जी ने स्वयं अपनी दुखती रग पर जैसे हाथ रखते हुए लिखा --

`भाई छोड़ो नहीं, मुझे
खुलकर रोने दो
यह पत्थर का हृदय
आंसुओं से धोने दो,
रहो प्रेम से तुम्हीं
मौज से मंजु महल में,
मुझे दुखों की इसी
झोंपड़ी में सोने दो ।`[3]

---

3. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 21

अर्थात् इसी तरह के दुखद क्षणों में अपने आप को ढांढस बंधाते कवि के अनमोल पल के अंश हैं - इस काव्य संग्रह की कविताएं और यही सब युगीन परिस्थितियां थीं जो सर्जना में सहायक बन गईं । कवि माखनलाल जी के जीवन में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और बदलाव को लाने में समय का अभूतपूर्व योगदान रहा । इसी प्रकार वर्ष 1904-1906 भी बहुत महत्वपूर्ण साबित हुए जिसकी थोड़ी चर्चा की जा चुकी है । यही वह समय था जब ये नार्मल मिडिल की शिक्षकीय परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद होशंगाबाद से जबलपुर गए । वहां उनकी भेंट बंगाल के क्रांतिकारियों से हुई । इस भेंट ने उन क्रान्तिकारियों से माखनलाल जी को गहराई से जोड़ना शुरू किया, परिणामस्वरूप इनका व्यक्तित्व लगभग बदल गया । माखनलाल जी इस क्रान्तिकारी दल में शामिल हुए और इन्होंने गुरु श्री सखाराम गणेश देवस्कर से दीक्षा भी ले ली । दीक्षा लेने के उपरान्त ये गीता, पिस्तौल और `आनंद मठ` उपन्यास को भेंट स्वरूप पाए । जहां गीता की कर्म वाणी ने इन्हें प्रेरणा दी, वहीं `आनंदमठ` ने पथ प्रदर्शक का काम किया और पिस्तौल ने मृत्यु का भय दूर कर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कुछ कर दिखाने की प्रेरणा दी ।

तत्पश्चात् उनकी सक्रिय भागीदारी का दौर आता है । वर्ष 1906 ई० में कांग्रेस में सक्रिय भागीदारी लेने कलकत्ता पहुंचे तिलक और तिलक की उग्रवादिता से प्रभावित इनकी टोली को कलकत्ता जाकर तिलक की रक्षा करने का आदेश मिला । उसके बाद ये खण्डवा मिडिल स्कूल में शांति भाव से अध्यापकी करने लगे । हालांकि क्रांतिकारी तरुण छुपकर इनसे सम्पर्क बनाए रखे । 1912 ई० में दशहरे के अवसर पर इनका एक लेख `शक्ति पूजा` `सुबोध-सिंधु` में प्रकाशित हुआ । तत्कालीन पुलिस इंस्पेक्टर को इसमें राजद्रोह की भनक मिली । इसी समय हमारे

कवि पर राजद्रोह का पहला मुकदमा चला । उसके पश्चात् प्रथम विश्व-युद्ध के माहौल में ही लोकमान्य तिलक जेल से छूटते हैं । इन्हीं सब विषम और अप्रत्याशित आपदाओं में घिरा कवि कभी-कभी निर्विकार हो जाया करता था या फिर कभी इस दमघोटूं वातावरण से दूर ईश्वर के चरणों में कुछ पल शान्ति से बिताना चाहता है । अपने ऊपर बीते दु:खों और संघर्षों को मानो ईश्वर की चरणों में सुस्ताते हुए कहता है --

"मार डालना किन्तु क्षेत्र में
जरा खड़ा रह लेने दो,
अपनी बीती इन चरणों में
थोड़ी-सी कह लेने दो ;"[4]

सन् 1913 ई० में इन्होंने `प्रभा` मासिक पत्र का सम्पादन 7 अप्रैल रामनवमी को किया । 1914 ई० में पत्नी की मृत्यु जैसी विषम परिस्थिति से उबरने के उपरान्त वर्ष 1915 ई० में भी कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुईं जैसे - जबलपुर के अखिल भारती हिन्दी साहित्य सम्मेलन में इनके नाटक `कृष्णार्जुनयुद्ध` की प्रस्तुति । पुन: लखनऊ कांग्रेस के अवसर पर मैथिलीशरण गुप्त के प्रथम दर्शन तथा विद्यार्थी जी के साथ गांधी जी से प्रथम भेंट हुई इनकी । 1915 ई० में ही नागपुर में माखनलाल जी ने स्वदेशी पर पहला भाषण दिया । इसी दौरान इनका सम्पर्क कांग्रेसियों से गहराता चला गया । 1918 ई० में चतुर्वेदी जी का नाटक `कृष्णार्जुन युद्ध` का प्रकाशन हुआ जो एक लाख से ऊपर बिक चुका है । इस तरह कवि माखनलाल जी ने अपने व्यक्तित्व को बहुआयाम दिया । कुछ तो वक्त की मांग देखते हुए उनके कार्य क्षेत्र में विभिन्नताएं आईं, कुछ युगीन परिस्थितियों ने स्वत: उकेरा । 1919 ई० में जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का समारोह था, तब गांधी जी ने क्रान्तिकारियों को सम्बोधित कर कहा था कि अब मेरी बात सुनने के लिए,

---

4. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 55

मेरे पास आते समय अपनी पिस्तौलें लाने का कष्ट न करें । उनके इस निमंत्रण पर माखनलाल जी ने गांधी जी की बातों पर गौर किया और आगे गांधी जी के कार्यक्रम को अपनाने का निश्चय किया ; हालांकि वे गांधी जी से पूरी तरह सहमत नहीं हुए थे । इस तरह माखनलाल जी 1919 ई0 में गांधी जी की राजनीति में प्रकट रूपसे शामिल हुए ।

1920 ई0 में इन्होंने अपनी पत्रिका `कर्मवीर` जबलपुर से निकाली । इसी वर्ष रतौना कसाईखाना आन्दोलन में अद्भुत सफलता मिली और यह मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सागर में सम्पन्न तीसरे अधिवेशन में नियुक्त प्रथम स्थायीसमिति के मंत्री बने । इसी तरह उनके जीवन में आगे भी कुछ संघर्ष भरे वर्ष आते हैं ; जिनसे जूझते-उबरते ये आगे बढ़ते जाते हैं । यूं तो पूरे जीवन ही उन्होंने संघर्ष किया, परन्तु 1921 ई0 की 12 मई को राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार हुए और 1922 ई0 में इन्होंने रिहाई पाई । इस दौरान इन्होंने जो कविताएं लिखीं, वे यों हैं -- `कौन ? याद की प्याली में `, `दूर न रह, धुन बंधने दे`, `जहां से जो खुद को `, `मैंने देखा था कलिका के`, `आ मेरी, आंखों की पुतली`, `तुही है बहकते हुओं का इशारा`, `पत्थर के फर्श, कतारों में । इनमें चार कविताएं तो बिलासपुर जेल में लिखी गयीं, जैसे - `जहां से जो खुद को, `आ मेरी आंखों की पुतली`, `तुही है बहकते हुओं का इशारा` तथा `पत्थर के फर्श कतारों में ` । कवि के अंत: मंथन और युगीन परिस्थितियों की बानगी देखनी हो तो हमें इन कविताओं की पंक्तियों पर गौर करना होगा, जिससे इनके उकेरे जाने के कारण का पता चले । यथा इनका आक्रोश है यों निम्नलिखित पंक्तियां -

`पत्थर के फर्श, कतारों में
सीखों की कठिन कतारों में

खंभों, लोहे के द्वारों में
इन तारों में दीवारों में ।'[5]

या फिर इनकी दूसरी कविता, जो आक्रोश के बाद क्षुब्ध भाव से लिखी गई है, द्रष्टव्य है -

'जहां से जो खुद को
जुदा देखते हैं
खुदी को मिटाकर
खुदा देखते हैं,
फटी चिन्थियां पहिने,
भूखे भिखारी
फ़क्त जानते हैं
तेरी इन्तजारी
बिलखते हुए भी
अलख जग रहा है ।'[6]

इसी तरह इन क्षुब्धताओं से जी हल्का नहीं होता है तो वैष्णव कवि का मन भगवत्शरण में आत्म-बल की आशा में जा बैठता है --

'तुही है बहकते हुओं का इशारा,
तुही है सिसकते हुओं का सहारा,
तुही है दुखी दिलजलों का 'हमारा',[7]

---

5. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 51
6. वही, पृ0 48
7. वही, पृ0 79

या फिर जेल में पड़े-पड़े कवि जब यह महसूस करता है कि जीवन की मोहकता चली गई है जेल की अकर्मण्यता से । देश की खातिर कुछ न कर पाने की विवशता अपने आराध्य को पुकार उठती है --

"आ मेरी आंखों की पुतली / आ मेरे जी की धड़कन /
आ मेरे वृन्दावन के धन / आ ब्रज-जीवन मन मोहन ।"[8]

1922 ई० में जेल से इनकी रिहाई होती है और 1923 ई० में विद्यार्थी जी जेल चले जाते हैं । विद्यार्थी जी के जेल चले जाने पर इन्होंने `प्रताप` का संपादन भी किया - अक्टूबर 1923 से मार्च 1924 तक । इसी वर्ष चतुर्वेदी जी ने पं० नेहरू, सरदार पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद, जमनालाल बजाज आदि के साथ झण्डा सत्याग्रह का नेतृत्व भी किया और उसमें सफलता पाई । इस वर्ष एक अन्य कार्य, जो इन्होंने किया वो था - नेहरू जी के साथ अखिल भारतीय स्वयंसेवक परिषद् का निर्माण करना । 1925 ई० से `कर्मवीर` को खण्डवा से प्रकाशित किया इन्होंने व इसी वर्ष छिंदवाड़ा में शिक्षण परिषद के अध्यक्ष भी बने । फिर तो आगे इनके संघर्षशील व्यस्तताओं का दौर आगे चलता ही गया । देशी राज्य प्रजा परिषद में ये विद्यार्थी जी, बाज जी, चांदकिरण शारदा, नृसिंह, चिन्तामणि केलकर, नेकराम शर्मा आदि के साथ सक्रिय रहे । सन् 1925-1936 ई० तक ये निमाड़ जिला कांग्रेस के अध्यक्ष रहे । 1925 ई० में ही 16 वें हिन्दी साहित्य सम्मेलन(वृन्दावन) में भाग लिया । जहां ये 1926 ई० में मध्य भारत हितवर्धक सभा के अध्यक्ष हुए, वहीं सन् 1927 ई० में भरतपुर सम्पादक सम्मेलन की अध्यक्षता किए। इसी वर्ष हमारे कवि `माखनलाल जी`, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य

---

8. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 71

में काव्य-पाठ करते हैं । वर्ष 1930 ई० में चतुर्वेदी जी के जीवन में कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं । 'जंगल सत्याग्रह' और 'नमक सत्याग्रह' में इन्होंने अपना विशिष्ट योगदान दिया तथा इसी वर्ष सक्रिय असहयोग आन्दोलन में ये फिर गिरफ्तार कर लिए गए । सन् 1931 ई० में जबलपुर सेंट्रल जेल में रहते हुए द्वन्द्व में घिरा व्याकुल कवि भगवत् शरण में जा कर न्याय की याचना करते हुए लिखता है --

'तु ही क्या समदर्शी भगवान् ?
क्या तू ही है, अखिल जगत् का
न्यायाधीश महान् ?'[9]

इसके पश्चात् 1935 ई० के चुनाव में माखनलाल जी मध्य प्रदेश पार्लियामेंटरी बोर्ड के अध्यक्ष चुने गए । उसमें टिकट वितरण में मतभेद के परिणाम स्वरूप केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा इनकी ओर से भेजे गए देशभक्तों के टिकट रद्द कर दिए गए । यानि वक्त ने अपने स्वार्थ वश इन्हें हाशिए पर लाकर खड़ा कर दिया । सत्ता के लिए राजनीतिक जोड़-तोड़ को देख कर इन्हें जबर्दस्त झटका लगा । इस समय सन् 1930 ई० से 1935 ई० तक जो कविताएं इन्होंने लिखीं, वो अपने आप को बहलाने या झूठा दिलासा मात्र के लिए नहीं लिखीं, बल्कि वे कविताएं इन्हीं की आत्मा से निकलीं और इनके तार-तार हुए मन की मरहम बनीं । कभी-कभी तो आत्मबल बटोरने की कोशिश भी की गई ईश्वर से कविता की भाषा में बातें करके । या फिर कभी अपनी जिम्मेदारियों को याद करके साहस बटोरा गया । उन पांच वर्षों के मध्य जो कविताएं लिखी गईं

----

9. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 50

उन्हें देखकर उपरोक्त बातों का अन्दाजा मिलता है । वे कविताएं वास्तव में स्वयं कवि के लिए सबसे बड़ा सहारा बनी होंगी, उस वक्त । इसलिए उन कविताओं का विवरण आवश्यक जान पड़ता है । वे कविताएं यों हैं - `तुम मन्द चलो`, चलो छिया - छी हो अन्तर में, जब तुमने यह धर्म पठाया, बोल तो किसके लिए मैं, बोल राजा, बोल मेरे, उस प्रभात, तू बात न माने, ऊषा के संग, पहिन अरुणिमा , मन धक-धक की माला गूंथे, मत झनकार जोर से, तू ही क्या समदर्शी भगवान्, यह अमर निशानी किसकी है, सजल गान सजल तान, कैसे मानूं तुम्हें प्राणधन आदि । उदाहरणास्वरूप `तुम मन्द चलो` कविता में अपने आप को जैसे दिलासा देते हुए कवि उन विषमताओं में से धीरे से निकलना चाहता है । कवि की विवशता दर्शाती ये पंक्तियां निम्नलिखित हैं --

`ये कड़ियां हैं, ये झुड़ियां हैं
पल हैं, प्रहार की लड़ियां हैं
नीरव निश्वासों पर लिखतीं -
अपने सिसकन, निस्पन्द चलो ।
तुम मन्द चलो ।`[10]

तुम मन्द चलो, या फिर `मेरा कौन कसाला झेले` कविता में निम्नलिखित पंक्तियों को देखकर वास्तविकता का पता चलता है --

`यह प्रहार ? चोखा गठबंधन ।
चुंबन में यह मीठा दंशन ।

----

10. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 4

पिये हरादे साये संकट
इतना क्या कम है अपनापन ?
बहुत हुआ, ये चिड़ियां चहकीं
ले सपने फूलों में ले ले ।
मेरा कौन कसाला झेले ।'[11]

अर्थात् उपरोक्त स्थितियों को देखते हुए इन पंक्तियों का प्रतीकार्थ स्वयं ब्यौरा बन सामने आता है । पुन: 1931 ई० के दिसम्बर में माखनलाल जी ने मध्य भारत प्रजा परिषद्, झांसी के दूसरे अधिवेशन की अध्यक्षता संभाली । यह उनके सामंतवाद विरोधी अभियान की शुरुआत मानी जा सकती है ।

माखनलाल चतुर्वेदी 1935 ई० से ही सक्रिय राजनीति से विरत होने लगे, जिसका कारण यह था कि कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व से मतभेद होने लगा था । अब हमारे कवि माखनलाल जी की सक्रियता पत्रकार के रूप में बढ़ी । यानि कि अब इनकी सक्रियता का मुख्य स्रोत इनकी पत्रिका 'कर्मवीर' बना । अपनी रचनाओं से क्रांतिकारियों को प्रेरणा देकर यह सक्रिय रहे व काफी हद तक इनकी सक्रियता को सफलता ही मिली । राजनीति से विमुख होकर माखनलाल जी निष्ठापूर्वक देशसेवा करने के बाद नि:स्वार्थ भाव से खिंदगांव लौट पड़े । मानो कर्तव्य पूरा कर लेने के बाद इन्होंने वानप्रस्थ आश्रम ले लिया हो । यह थी उनकी नि:स्वार्थ सेवा भावना जो युगीन परिस्थितियों के राजनीतिक रौ में सक्रियता के साथ बहती रही । इसी सन्दर्भ में श्रीकान्त जोशी के शब्द बड़े

---

11. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 36

सटीक मालूम पड़ते हैं -'बने-बनाये रास्ते आसान होते हैं , पर अपनी राहों का निर्माण करते हुए कदम-दर-कदम आगे बढ़ना किसी अस्खलित निष्ठा के बगैर संभव नहीं हो सकता ।'[12]

'हिमतरंगिनी' को युगीन परिस्थितियों में रखते हुए अगर हम उसे सामाजिक सन्दर्भों में रखकर देखते हैं तो पाते हैं कि उस समय परतंत्र भारत के नागरिक स्वतन्त्र होने के लिए आकुल थे । इस दिशा में तरह-तरह के प्रयास हो रहे थे । जनता जागरूक हो रही थी । उसी जागरूक चेतना ने संघर्ष भी छेड़ा था । वस्तुत: उस समय की राजनैतिक स्थितियां ही समाज पर हावी थीं । समाज उन राजनैतिक स्थितियों का एक ढंग से पर्याय ही था । परतंत्र भारत में अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का शोषण हो रहा था । किसान-मजदूर वर्ग की हालत तो अत्यन्त दयनीय थी । माखनलाल जी सामंतवाद - पूंजीवाद के विरोधी थे । साम्राज्यवाद से संघर्ष का एक मूल कारण उस समय का सामाजिक आधार भारतीय सामंतवाद भी था । या सीधे-साधे शब्दों में उक्त सामाजिक आधार या सामंतवाद अंग्रेजों की जड़ जमाए रखने में सहायक बनता जा रहा था । भारतीय स्वतंत्रता का मायने सिर्फ साम्राज्यवाद से छुटकारा नहीं था, बल्कि उस समय का सामाजिक ढांचा तोड़कर सामंतवाद के चंगुल से रिहाई की जरूरत थी । यह अपने-आप में महत्वपूर्ण मायने रखने वाला तथ्य था । अत: हमारे कवि के सामने यह एक महत्वपूर्ण विषमता सामने खड़ी थी व इनके संघर्ष के कदम इस ओर भी बढ़े थे । 'माखनलाल जी इस अर्थ में युग-द्रष्टा थे, अपने समय के तमाम बड़े राजनीतिज्ञों

---

12. श्रीकान्त जोशी - माखनलाल चतुर्वेदी, पृ0 35

की अपेक्षा वह स्पष्ट देख रहे थे, बार बार घोषित कर रहे थे कि व्यापक सामंत विरोधी क्रांति के बिना भारत का साम्राज्य विरोधी आन्दोलन कभी पूरी तरह सफल नहीं हो सकता ।[13]

अब अगर हम उस युग के सामाजिक ढांचे की विषमताओं की ओर नजर दौड़ाते है तो पाते हैं कि सचमुच कवि उन विषम परिस्थितियों से उबरने के लिए पल दो पल भगवत् शरण में क्यों बिताना चाहता था ? क्यों उन परिस्थितियों में कुछ कविताएं अपने आप को, समाज को, देश को दिलासा देते हुए या फिर ईश्वर से शक्ति और सहायता मांगते हुए लिखी गईं ?

सन् 1857 के विद्रोह ने कभी अंग्रेजी राज की जड़ों को हिलाकर रख दिया था । ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थान पर ब्रिटिश क्राउन का शासन स्थापित हुआ । अंग्रेजों ने बदले समय में एक सहायक सामाजिक वर्ग को महसूस किया, जो आड़े वक्त उनका साथ दे । तभी तो वक्त की मांग को देखते हुए अपने नीति-फायदे की खातिर ऐसे सहायक वर्ग का निर्माण कार्नवालिस ने भारत में स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था लागू करके किया । इसी भूमि व्यवस्था से जनता तथा राज्य के बीच बिचौलिये के रूप में जमींदारों का उदय हुआ । हिन्दुस्तान में जमींदारी प्रथा पहले से ही चली आ रही थी । उस समय के जमींदारी कानून अंग्रेजों के समय की जमींदारी व्यवस्था से बिलकुल भिन्न थी । उस व्यवस्था के अन्तर्गत सारे गांव की उपज का मात्र एक अंश ही राजा को देना पड़ता

---

13. डा० चन्द्रभानु प्रसाद सिंह - माखनलाल चतुर्वेदी और स्वाधीनता आन्दोलन, पृ० 103

था । उस समय जमींदार सिर्फ इसे इकट्ठा करने का काम करते थे । ये जमींदार जब राजा का हिस्सा किसानों से वसूल करते थे तो अक्सर नर्म रुख से पेश आते थे । अब अंग्रेजों ने अपने स्वार्थवश जो सबसे खतरनाक काम सामाजिक ढांचा बदलने के लिए किया, वो था किसानों से हमदर्दी रखने वाले जमींदारों को बदलना । जमींदारों को बदलने के लिए अंग्रेजों ने उन पर दबाव डाला, अलग-अलग कानून की शक्ति से उन्हें मजबूर किया । अंग्रेजों ने जमींदारों से लगान लेने की रकम तय कर दी थी । नतीजा यह हुआ कि अपनी जमींदारी बचाये रखने और लगान की वो तयशुदा रकम अदा करने की खातिर अब जमींदार किसानों के साथ बेरहमी से कर वसूलने लगे । कर की रकम बढ़ा कर बड़ी ही निर्ममता के साथ इन ग्रामीण जनता को लूटने की कोशिश की जाने लगी ।"अंग्रेजी राज में किसानों की सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि देश के सारे रोजगार विदेशियों को देकर किसानी पर जीने वालों की तादात 74 फीसदी बढ़ा दी गई । दूसरे उनकी आमदनी का आधा हिस्सा टैक्स में वसूल कर लिया जाता था । फलत: देश के आधे किसान आधे पेट रहकर दिन गुजारने को अभिशप्त थे ।"[14]

भूमि सम्बन्धों के नए बन्दोबस्त से ग्रामीण समाज में तीन मुख्य परिणाम सामने आये । पहला एक सशक्त बिचौलिये के रूप में जमींदारों का वर्ग उभर कर सामने आया, जिसे कृषि और किसान से नहीं केवल लगान से सरोकार था । लगान के लिए वे किसानों से जोर-जबरदस्ती करने तथा उन्हें बेदखल करने में क्षण भर की देर नहीं लगाते थे । लगान के आतंक से लाचार किसान प्राय: महाजनों की शरण लेते थे और

---

14. डा० चन्द्रभानु प्रसाद सिंह - माखनलाल चतुर्वेदी और स्वाधीनता आन्दोलन, पृ० 104

महाजन अनपढ़ किसानों का शोषण करते थे । नतीजा यह हुआ कि किसान धीरे-धीरे महाजनों के चंगुल में फंसते गए और इस तरह उनकी ज़मीन महाजनों तथा धनी किसानों के हाथ पहुंचते गए । इन्हीं सब व्यवस्थाओं को देखकर माखनलालजी लिखते हैं --

'महलों पर कुटियों को वारो
पकवानों पर दूध-दही...
छीनूंगी निधि नहीं किसी -
सौभागिनि, पुण्य-प्रमोदा की
लाल वारना नहीं कहीं तू
गोद गरीब यशोदा की ।'[15]

महाराष्ट्र के किसानों की इसी दुर्दशा का वर्णन करते हुए डा० विपिनचन्द्रा ने लिखा है -' भू राजस्व चुकाने के लिए इन फटेहाल किसानों के पास इसके सिवा कोई चारा न था कि वे महाजनों की शरण में जाएं । महाजनों ने इस मौके का फायदा उठाया और कर्ज के बदले किसानों की जमीन और घर रेहन रखवा लिए । कमरतोड़ ब्याज की वसूली से किसान और भी टूटते गए ।'[16]

दूसरा परिणाम कृषि के व्यवसायीकरण के रूप में सामने आया । वस्तुत: अंग्रेजों का उद्देश्य नए कृषि सम्बन्धों द्वारा न केवल अधिकाधिक राजस्व का दोहन करना था, वरन् स्वयं निर्यात् के लिये किसानों को

---

15. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 56
16. विपिन चन्द्रा - भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृ० 25

कुछ व्यवसायिक फसलें खास कर नील, कपास, चाय आदि के उत्पादन को मजबूर करना भी था । ताकि इनके निर्यात से अंग्रेज व्यापारियों को भारी मुनाफा प्राप्त हो । फलत: देश में खाद्यान्न की कमी पड़ने लगी । बार-बार अकाल पड़ते और लाखों लोगों को अपना ग्रास बना लेते । 1901 ई०, 1906 ई० और 1942 ई० के अकालों की विभीषिका से तो सहस्रों लोग मृत्यु की शैय्या में सो गए ।

तीसरा परिणाम बेगार के रूप में सामने आया । वस्तुत: नयी व्यवस्था में अंग्रेजों ने जमींदारों को -'भूमि के स्वामी के रूप में स्वीकार किया, जबकि परंपरागत व्यवस्था में उनकी हैसियत 'बिचौलिये' मात्र की थी । भूमि का स्वामी बन जाने से जमींदारों को किसान-मजदूर से बेगार लेने का हक भी मिल गया । पहले तो किसान खाली समय में दस्तकारी आदि गैर कृषि कार्यों से अतिरिक्त आय का अर्जन करते थे, लेकिन अब बेगार के कारण उस आय की संभावना भी खत्म हो गयी । इस नयी व्यवस्था में छिपे किसान विरोधी दृष्टिकोण को माखनलाल जी की पैनी नजर ने पहचान लिया था । वे किसान को नयी व्यवस्था के प्रति आगाह करते हैं - 'बाबा, तेरी तकदीर फोड़ने वाले का तुझे पता नहीं है और न तुझे इस बात का पता है कि सारा कलयुग हिन्दुस्तान पर और वह भी तेरी खेती पर कैसे टूट पड़ा है । मजे की बात तो यह है कि तू उन दिनों सुखी था जब तेरे 12 मन गल्ले का दाम 12 रुपये था । आज जब 12 मन गल्ले का दाम 60-70 रुपये हो गया है, तब तू गरीब हो गया है । किन्तु अपने आस-पास नजर दौड़ाने और अपने हित-अहित की बातों को जाने और समझे तो तुझे पता लग जाए कि तेरे घर में कलयुग किस रास्ते से होकर आ रहा है और तेरी तकदीर को फोड़ने वाला हथौड़ा किस भाग्यवान के हाथ में है ।'[17]

---

17. माखनलाल चतुर्वेदी - रचनावली - भाग 3, पृ० 15

ब्रिटिश शासन का सबसे गहरा प्रभाव भारतीय गांवों की संरचना पर पड़ा था । पहले भारतीय गांव कमोबेश एक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में कार्य करते थे, लेकिन अंग्रेजों ने अपने देशज व्यापारियों के हित के इस आत्मनिर्भरता को समाप्त किया । उन्होंने संचार के साधनों के द्वारा पहले गांव के अलगाव को समाप्त किया । सड़क तथा रेल मार्गों से इंग्लैण्ड का बना-बनाया माल भारतीय गांवों तथा कस्बों में पहुंचाया गया । औद्योगिक तकनीक के कारण इन सामानों की उत्पादन लागत बहुत कम और मात्रा बहुत अधिक थी । फलत: देशी बाजारों पर इन विदेशी सामान की भरमार हो गयी और देशी वस्तुएं प्रतिस्पर्द्धा से बाहर हो गयीं । इस षड्यंत्र की तरफ इशारा कर मासनलालजी लिखते हैं --"अब तो नाई, चमार और बढ़ई सबका सामान विलायत से आने लगा, तब तुम्हारे गांव के लुहार क्या करते ? वे थोड़े दिनों भूखे मरें, तुम्हें कोसते रहे । फिर लाचार होकर अपने भट्ट, धौंकनी, हथौड़े और अपनी कारीगरी के हाथ और अकल को नमस्कार करके हल पकड़ कर किसान बन गए और बर्मिंघम और ब्रिस्टल के लोहे के औजार खरीद कर तुमने समझा कि तुम सुधर गए ।"[18]

मासनलाल जी भारत में औद्योगिकीकरण की सूक्ष्म प्रक्रिया को समझ रहे थे । इसके द्वारा उद्योग-धन्धे चौपट होने के कारण भारत में परंपरागत शहरी केन्द्र विघटित हो रहे थे । बेरोजगार श्रमिक और दस्तकार खेती की ओर लौट रहे थे । सीमित कृषि संसाधन अब इस अतिरिक्त भीड़ का दबाव सहन नहीं कर पा रहे थे । इस तरह अंग्रेजों ने समाज के विकास प्रक्रिया को उल्टी दिशा में मोड़ दिया था ।

---

18. मासनलाल चतुर्वेदी रचनावली - भाग 10 , पृ0 51

विऔद्योगिकीकरण एक ऐतिहासिक तथ्य है । 1901 में अमिय बागची ने जनसंख्या के आंकड़ों का सर्वेक्षण किया, उनका विश्लेषण दर्शाता है कि उद्योग पर आधारित जनसंख्या 18 प्रतिशत से घट कर 8 प्रतिशत रह गयी थी और सूत कातने एवं बुनने वालों की संख्या में भारी कमी आयी ।[19]

इस उलटी दिशा के परिवर्तन के प्रति माखनलाल जी सचेत थे। इसी कारण रायल कमीशन के पीछे छिपे कुटिल भावना का उन्होंने इन शब्दों में विरोध किया -"रायल कमीशन चाहता है कि भारतवासी केवल खेती पर जीने को विवश हों । यह भारत के भूखे पेटों, सूखी हड्डियों और गरीब किसानों को चुनौती है । क्या हम इस चुनौती को बर्दाश्त कर लेंगे ? हमें एक स्वर से गर्जना करनी चाहिए - हमें खेती का क्षुरास्त्र मत सिखाओ । हमें उद्योग, व्यापार की कुंजी चाहिए । हम प्राण रहते अपने बचे-खुचे कुछ बाजार तुम्हें हरगिज न हथियाने देंगे ।"[20]

विदेशी शासन ने अपने राजनैतिक-आर्थिक प्रशासन से न केवल गांवों की रचना को भंग किया, बल्कि चेतना के स्तर पर भी साम्प्रदायिकता का जहर घोल दिया । हिन्दू और मुसलमान की एकजुट शक्ति विदेशी शासन के लिए कितना बड़ा खतरा बन सकती थी, इसका उदाहरण वे 1857 के विद्रोह में देख चुके थे । ऐसी किसी सम्भावना को समाप्त करने के लिए 1909 ई० में मुस्लिम लीग का गठन किया गया, साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रणाली आरम्भ की गयी । यही वे प्रस्थान बिन्दु थे,

---

19. सुमित सरकार - आधुनिक भारत, पृ० 50
20. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग 10, पृ० 51

TH-8240

जिनकी चरम परिणति भारत के विभाजन में हुई । भेदपरक निर्णयों के कारण दोनों समुदायों के बीच वैमनस्य का बीज पड़ गया । इस कारण देश में बार-बार दंगे हुए, जिसमें सैंकड़ों लोगों की जानें गईं । साम्प्रदायिक लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि हिन्दू और मुस्लिम दो राष्ट्र हैं । दोनों की संस्कृति, आचरण और हित एक-दूसरे से भिन्न हैं । इसलिए दोनों समुदाय परस्पर साथ नहीं रह सकते । माखनलाल जी इन भेदपरक और आधारहीन विचारों का जमकर विरोध करते हैं -- 'हिन्दू-मुसलमानों के स्वार्थ भिन्न नहीं हैं और जमाना कह रहा है कि मुसलमानों की जरूरतों पर हिन्दू प्राण लेकर तैयार रहते हैं और मुसलमानों के दिलों में अपने हिन्दू भाइयों के लिए प्यार और हमदर्दी पैदा हो गई है । किन्तु शासन के विधाता इसको देख नहीं सकते । वे सदा ही ऐसे साधनों को ढूंढ कर काम में लाया करते हैं, जिनसे फूट के बीजों को पानी पहुंचे और उगने, फूलने तथा फलने का मौका मिले । किन्तु यही हमारे आंखें खोल कर देखने का जमाना है ।'[21]

DISS 0,152,1,M89:9 152 N9

इस तरह माखनलाल जी अपने युग में घटित हो रहे कार्य-व्यापारों के सचेत द्रष्टा थे । पराधीनता, सामाजिक दुर्दशा और साम्प्रदायिकता को लेकर उनके मन में गहन मंथन था । यह विचार के रूप में उनके लेखों में तो भाव रूप में कविताओं में सामने आया । `हिमतरंगिनी` इसका अपवाद नहीं है । उदाहरणस्वरूप --

'ले तेरा मजहब यह दौड़ा
मौन प्रेम से कलह मचाने,

---

21. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग 9, पृ0 29 - संपादक श्रीकांत जोशी

और प्रेम ने प्रलय-रागिनी -
भर दी अग-जग में अनबोले
कौन तुम्हारी बातें बोले ।'[22]

बाहरी आवरण तो इन गीतों पर प्रार्थना, आराधना और प्रणय को दर्शाता है, लेकिन भीतरी संवेदना युगीन परिस्थितियों की चेतना से निर्मित हुई है । यही कारण है कि उनके प्रणय गीतों में फांसी, कालापानी, बन्दीगृह, जंजीर, सूली और यातना आदि बलिदानपरक शब्दों का बार-बार प्रयोग हुआ है । यथा -

'जंजीरें हैं, हथकड़ियां हैं
नेह सुहागिन की लड़ियां हैं
काले जी के काले साजन
कालेपानी की घड़ियां हैं ।'[23]

स्पष्टत: यह विदेशी शासन से मुक्ति के लिए संघर्षरत व्यक्ति का प्रेम है । न्योछावर होने का भाव प्रेमी पर ही नहीं, अपने देश - अपनी भारतमाता पर भी है ।

उनकी भक्तिपरक गीतों में आधुनिक वैष्णव भावना के दर्शन होते हैं । इस नव वैष्णव भावना की विशेषता यह है कि उसमें कवि का देश प्रेम और भक्ति-भाव परस्पर अलग नहीं हैं, उसमें ये दोनों मिल कर एक हो गए हैं । अपनी देशभक्ति और मुक्ति कामना को व्यक्त करने के लिए

---

22. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 25
23. वही, पृ0 85

उन्होंने प्राय: भक्ति के रूपकों का प्रयोग किया है । कवि का आराध्य किसी मंदिर का देवता नहीं वरन् राष्ट्र का मानवीकृत रूप है, कवि का सखा-सहचर है, जिससे कवि अपने पराधीन देशवासियों के उद्धार की, पतितों के कल्याण की कामना है । उसकी आराधना के पीछे स्वयं के मुक्ति की इच्छा अथवा मोक्ष की आकांक्षा नहीं वरन् जन-कल्याण और देश के उद्धार की कामना है । वे कहते हैं --

`मास्न पावे वृन्दावन में
बैठा विश्व नचावे,
वह मेरा गोपाल, पतन से
पहिले पतित उठावे ।`[24]

कवि के लिए देश सेवा, ईश्वर सेवा का ही दूसरा रूप है । वह स्वयं को इस पर न्यौछावर करने को सदैव तत्पर है । बदले में न स्वयं के लाभ की लालसा है और न ही शासन के प्रति द्वेष का भाव । वे अपने बलिदान पथ पर निष्काम भावना से अडिग हैं । स्वयं पर और अपनी साधना पर अगाध विश्वास के कारण वे दु:खों से घबराते नहीं हैं । देशवासियों की दुर्दशा से मास्नलाल जी व्यथित थे । विदेशी शासन के प्रति आक्रोश को अपने लेखों में व्यक्त किया, जनता को जागृत करने का प्रयास किया । पराधीनता से मुक्ति द्वारा ही कल्याण सम्भव है, ऐसा महसूस किया और कराया । इसलिए वे किसान-मजदूरों के जागरण का आह्वान करते हैं । इस आह्वान की ध्वनि पार्श्व रूप में `हिम-तरंगिनी` के गीतों में उपस्थित है ; भले ही बाह्य रूप उनका प्रार्थना

---

24. मास्नलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 51

का हो, पूजा का हो या आराधना का । उदाहरणस्वरूप -

'खुले मंजु मुक्ति द्वार
शान्ति पहर पर
क्रान्ति लहर पर
उठ अब ऐ महाप्राण ।'[25]

इनकी कविता की बुनावट में किसान जीवन की चेतना के दर्शन होते हैं । अर्थात् 'हिमतरंगिनी' के पूजा गीत में भी इस चेतना का लोप नहीं होता । उदाहरण स्वरूप वृन्दावन सम्मेलन में लिखी गई उनकी एक गीत की बानगी सटीक लगती है उपरोक्त तथ्य को दर्शाने में -

'माधव की रट है ? या प्रीतम -
प्रीतम टेर रहे ? बोलो ।
या आसेतु-हिमाचल बलि-
का बीज बखेर रहे ? बोलो ।
या दाने-दाने छाने जाते
गुनाह गिन जाने को,
या मनका-मनका फिरता
जीवन का अलाव जगाने को ।'[26]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'हिमतरंगिनी' किस प्रकार अपने युगीन सन्दर्भों को अपने-आप में समेटे हुए जीवन्त बनी है । अपने युग विशेष में जीता यह काव्य संग्रह कवि माखनलाल जी की उत्कृष्ट उपलब्धि बन

---

25. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 52
26. वही, पृ० 20

गया । एक हद तक इस काव्य संग्रह को कालजीवी के साथ-साथ कालजयी भी कह सकते हैं ; क्योंकि सन्दर्भ भले ही पुराने हो जाएं, इसकी सार्थकता, इसका मूल्य बोध हमेशा के लिए उपयुक्त व सटीक साबित होगा । वस्तुत: युग के थपेड़ों - परिस्थितियों आदि को `हिम-तरंगिनी` ने अपने में समेट कर सुरक्षित और विशिष्ट बनाया । या हम इसे यों कहें तो अनुचित न होगा कि `हिमतरंगिनी` ने युगीन सन्दर्भों परिस्थितियों को एक रत्नगर्भा की तरह समेटा, तरंगों में बह जाने केलिए छोड़ नहीं दिया ।

--

अध्याय : दो

`हिमतरंगिनी` में स्वच्छंदतावाद एवं प्रगतिशील तत्व

कवि की राय में `हिमतरंगिनी` उन क्षणों की सृष्टि है, जब वह `भीतर को देखती है` । भीतर को देखने या की अन्तरात्मा की बातें जब काव्य रूप में बाहर आईं तो जाहिर है स्वच्छन्द-स्वतन्त्र रूप में गेय बनकर बाहर निकलीं । किसी एक वाद के घेरे में लिपट कर नहीं आई हैं कवि की कविताएं । बल्कि वादों के विवाद में पड़ना उन्हें कतई उचित भी न लगा । वे तो अपने मन की बातें तरंगों में उड़ेलते चले गए और उसे समेट देने पर वही हिमतरंगिनी नाम पा गईं । वे जिस युग में रचनाएं कर रहे थे वो छायावादी युग था या उससे पहले स्वच्छंदतावाद युग रहा होगा । यानि `हिमतरंगिनी` में लिखी गई लगभग 1908 ई0 से 1920 ई0 तक की इनकी रचनाएं स्वच्छंदतावाद के घेरे में आलंगी युग के दृष्टिकोण से । किन्तु इन्होंने कविताएं किसी युग विशेष की शैली निभाने के लिए नहीं लिखीं । हां, ये अवश्य हुआ कि कभी-कभी ये कविताएं अपना स्वतः एक अस्तित्व बना गईं, जिन्हें हम अलग-अलग वादों के घेरे में संतुलित ढंग से बिठा सकते हैं । ये अलग से पैबन्द की तरह चिपकी हुई मालूम नहीं पड़ती हैं और ना ही इन्हें फिट करने के लिए पाठक को ज्यादा मशक्कत करनी पड़ती है । इनकी प्रखर चेतना हर युग को ललकारती है । कभी-कभी तो उस युग विशेष को लांघ कर सुदूर आने वाले युग की रचनाएं कर जाते हैं ये । ऐसा स्वतः ही अपनी चेतना से करते हैं । वादों के विवाद और अपनी कविताओं के प्रति कवि का नजरिया यों है -"गद्य में मैं लेखकों और कलाकारों के लिए चाहे जितना लड़ूं, किन्तु कला में मैं भीख की भाषा पसन्द नहीं करता। मैं निवेदन करूं कि कला में वादों पर मेरा कभी विश्वास नहीं रहा । किसी रचना को कोई छायावादी कहे, रहस्यवादी कहे, प्रगतिवादी कहे या प्रतीकवादी कहे, इन बातों से मुझे कभी कुछ नहीं लेना-देना ।"[1]

---

1. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली - भाग 2, पृ0 328

अनेक विद्वानों ने इन्हें छायावाद का प्रवर्तक माना है । यानि `प्रसाद के पहले ही कवि माखनलाल जी की कविताओं में छायावादी पुट दिखाई देने लगे थे । इन्होंने जिस युग में कविताएं लिखने की शुरुआत की, उस युग में मुकुटधर पाण्डेय, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवि स्वच्छंदतावाद के घेरे में रचनाएं कर रहे थे । उस युग में भी हमारे कवि जो स्वच्छंदतावाद की शैली से हट कर आगे की शैली विकसित कर रहे थे, वही छायावाद की शुरुआत मान ली गई कुछ विद्वानों द्वारा । वस्तुत: स्वच्छंदतावाद के दायरे की भी कुछ कविताएं इन्होंने लिखीं । जैसे - `गो-गण संभाले नहीं जाते मतवाले नाथ` - गीत 7, `सुनकर तुम्हारी चीज हूं ` - गीत 9, `उड़ने दे घनश्याम गगन में ` - गीत 13, `जिस ओर देखूं बस ` - गीत 14, `माधव दिवाने हाव-भाव` - गीत 30, `उठ अब, ऐ मेरे महाप्राण` - गीत 32, `मार डालना किंतु क्षेत्र में ` - गीत 32, `दुर्गम हृदयारण्य दण्ड का ` - गीत 42, `हे प्रशान्त । तूफान हिये ` - गीत 43, `गुनों की पहुंच के ` - गीत 54 आदि । इन कविताओं में कुछ तो द्विवेदी युगीन कविताओं जैसी विशिष्टता है और कुछ उससे विकसित आगे के युग के संकेत देती हैं ।

यों कवि की वैष्णव आस्था `हिम तरंगिनी` की रचनाओं में उजागर हुई हैं, परन्तु वह सिर्फ भक्ति गीत या वैष्णव आस्था की प्रतीक नहीं बनी है, बल्कि अत्यंत अनूठे व गहन स्तर पर मानवता के गीत गाती है । माखनलाल जी की स्वच्छंदतावादी कविताएं बहुत ही रमणीय हैं । इनकी कविताओं में सौन्दर्य, रस, लय आदि का महत्व है । स्वच्छंद कविता यानि रोमेंटिक कविता स्वभाव से आवेगमयी होती है । प्राकृतिक तथा मानवीय सौन्दर्य को मिलाकर प्रेमावेग की प्रवाहमयी अभिव्यक्ति ही स्वच्छंद कविता बनती है । माखनलाल जैसे स्वच्छंद कवि के लिए प्रकृति

प्रेम और मानवीय प्रेम में कहीं अलगाव की भावना नहीं है । इसी बिन्दु पर ये बड़े जबर्दस्त मानवतावादी हैं, जिसका आधार इनकी कविताओं में प्रेम है । 'प्रकृति, देशभक्ति, वन-वैभव और एकान्त प्रणय स्वच्छंदतावाद के ये मूल तत्व कहे जा सकते हैं । और इन सब के ऊपर है वैयक्तिक स्तर पर विद्रोह का भाव । ऐतिहासिक दृष्टि से स्वच्छंदतावादी काव्य का यह रूप छायावाद के अवतरण को सम्भव बनाता है ।'[2]

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए उदाहरण स्वरूप वैयक्तिक स्तर पर विद्रोह के भाव के रूप में `हिमतरंगिनी` में हमारे कवि की कई पंक्तियां सामने आती है । यथा -

'दोषी हूं, क्या जीने का
अधिकार नहीं दोगे मुझको ?
होने को बलिहार, पदों का
प्यार नहीं दोगे मुझको ?'[3]

या फिर स्वच्छंद कविता के भीतर देशभक्ति के पुट की एक बानगी यों है --

'प्यारे इतना-सा कह दो
कुछ करने को तैयार रहूं,
जिस दिन रूठ पड़ो
सूली पर चढ़ने को तैयार रहूं ।'[4]

---

2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ0 795
3. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0
4. वही, पृ0 55

इसी प्रकार स्वच्छंदतावाद के भीतर एकान्त प्रणय जैसे भाव भी हिमतरंगिनी में यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं । इस क्षेत्र में भी हमारे कवि की लेखनी को महारत हासिल है । उदाहरण स्वरूप --

`गुनों की पहुंच के
परे के कुओं में,
मैं डूबा हुआ हूं
जुड़ी बाजुओं में ।`[5]

या फिर एकान्त प्रणय को व्यक्त करती एक अन्य बानगी है --

`स्मृति पंखें फैला-फैला कर
सुख-दुख के झोंके ला-ला कर
ले अवसर, उड़ान अकुलाकर
हुई मग्न दिलदार लगन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में ।`[6]

यहां एक अर्थ में स्वच्छंदतावादी कविता का मूल मंत्र यह है कि `ले अवसर उड़ान अकुलाकर` । `सुख-दुख के झोंके ला-ला कर` यानी रूढ़ियों के त्रस्त होने के बाद उस युग में आकुल-व्याकुल मनुष्य मौका मिलते ही स्वच्छंद विचरण या दूर आकाश तक उड़ान भरने की आजादी चाहने लगा था । इस तरह एकान्त प्रणय के व्यक्त करने की स्वतन्त्रता पहली बार मिल रही है । `हिमतरंगिनी` में भी स्वच्छंदतावाद के मूल-बीज

---

5. माखनलाल चतुर्वेदी - `हिमतरंगिनी`, गीत 54, पृ० 90
6. वही, गीत 13, पृ० 23

मंत्र प्रकृति, देश भक्ति, वन-वैभव, एकान्त प्रणय, वैयक्तिक स्तर पर विद्रोह आदि यत्र-तत्र गीतों में या पूजा गीत कही जानेवाली कविताओं में सहजता से कवि द्वारा पिरोये हुए मिल जाते हैं ।

जहां कवि ने अपनी कविता द्वारा मानव के अस्तित्व को अपने आराध्य का सामीप्य देना चाहा, वहां उनकी कविताएं वैष्णव आस्था-वादी और छायावाद युग की रहस्यवादी ढर्रे की बन पड़ी हैं । 1908 ई० में लिखी गयी इनकी एक कविता है -

`हे प्रशान्त । तूफान हिये -
मैं कैसे कहूं समा जा ?....
चिक्कण हृदय-पत्र प्रस्तुत है
अपना चित्र बना जा
नवधा की, नौ कोने वाली,
जिस पर फ्रेम लगा दूं
चन्दन, अक्षत भूल प्राण का
जिस पर फूल चढ़ा दूं ।`[7]

इस कविता में और हरिऔध जी की `नवधा भक्ति` में कितना फर्क है ? सबसे बड़ा अन्तर भाषा के स्तर पर है । चतुर्वेदी जी की भाषा में एक नयापन दिखता है । मालवलाल जी के इसी कविता के संदर्भ में प्रो० श्रीकान्त जोशी जी अपने एक लेख `हिमतरंगिनी : एक अवलोकन` में लिखते हैं --`संग्रह की भाषा कवि-व्यक्तित्व की पहचान व्यक्त करती है । सूक्ष्म भावों को प्रकट करने की कशमकश छुपती नहीं ।

---

7. हिमतरंगिनी, पृ० 69

'नवधा भक्ति' के लिए 'नौ कोने वाली फ्रेम' कहकर कवि अपनी भाषा में, 1908 की भाषा में, ताजगी भर देता है ।'[8]

'हिमतरंगिनी' की कविताओं में रहस्यवाद पर प्रकाश डालने से पहले यह दर्शाना आवश्यक जान पड़ता है कि कवि की रहस्यवादी भावनाओं का आधार क्या है ? इनके यहां रहस्यवाद का आधार वैष्णव सगुणधारा और मानव महत्ता की पराकाष्ठा है । इनकी रहस्यात्मकता का एक आधार राष्ट्रीय रहस्यात्मकता भी है । वैयक्तिक वेदना से ही माखनलाल जी की वैष्णव-भावना में प्रगाढ़ता आई है । कैसे रहस्य-वादी कविताओं में ईश्वर अपरोक्ष रूप से उजागर किये जाते हैं मनोजगत में या जगत में । कभी-कभी तो प्रणयगीत या प्रेमगीत, प्रकृति वर्णन के साथ मनोजगत की दशा बताने में ही असीम की अभिव्यक्ति हो जाती है । आत्मनिवेदन किसी भी रूप में ईश्वर को व्यक्त कर सकता है । रहस्यवाद में इसके लिए यह आवश्यक शर्त नहीं है कि ईश्वर की बात हो तो कविता भी भक्तिगीत ही हो या भजन हो । उपरोक्त परिस्थितियों में अभिव्यक्ति का एक झीना आवरण ही रहस्यवाद को जन्म देता है । रहस्यवाद के अन्तर्गत आत्मनिवेदक और इष्ट के साथ तारतम्यता को महादेवी वर्मा ने यों उजागर किया है --'रहस्योपासक का आत्मसमर्पण हृदय की ऐसी आवश्यकता है जिसमें हृदय की सीमा एक असीमता में अपनी ही अभिव्यक्ति चाहती है । और हृदय के अनेक रागात्मक सम्बन्धों में माधुर्य भावमूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुंच सकता है, जो सब रेखाओं में रंग भर सके, सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्मनिवेदक को ईस्ट

---

8. प्रो० श्रीकान्त जोशी - 'हिमतरंगिनी : एक अवलोकन,' लेख से ।

के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके ।`[9]

इस प्रकार महादेवी जी के अनुसार रहस्योपासक का आत्मसमर्पण हृदय की आवश्यकता है, जहां हृदय असीम में अपने को व्यक्त करता है । इसी तरह हमारे कवि जब ठेठ वैष्णव अंदाज में अपने ईस्ट या असीम में स्वयं को व्यक्त करते हैं तब उनकी कविताएं कहीं रहस्यवादी तो कहीं पूजागीत बन पड़ी हैं । उनकी इस तरह की कविताओं में से एक कविता इस प्रकार है--

`यह किसका मन डोला ?
मृदुल पुतलियों के उछाल पर
पलकों के हिलते तमाल पर
नि:श्वासों के ज्वाल-जाल पर
कौन लिख रहा व्यथा कथा ?`[10]

उपरोक्त कविता को पढ़कर लगता है जैसे भाव विन्यास या शब्द चयन महादेवी वर्मा की कविताओं से मिलते-जुलते हैं । वस्तुत: `हिम-तरंगिनी` काव्य संग्रह में कई रहस्यवादी कविताएं हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख कविताएं हैं -- `यह किसका मन डोला ?` गीत 5, `चलो छिया - दी है अन्तर में ` - गीत 6, `जिस ओर देखूं बस ` - गीत 14, `उस प्रभात, तू बात न माने ` - गीत 19, `झुक का साथी - मोम-दीप मेरा` - गीत 8, पुतलियों में कौन - गीत 50, `अपनी जबान खोलो तो` - गीत 52, `गुनों की पहुंच के ` - गीत 54, `कौन ? याद की प्याली

----

9. महादेवी वर्मा -`दीपशिखा` काव्य संग्रह की भूमिका `चिन्तन के कुछ क्षण` से, पृ0 31

10. हिमतरंगिनी, गीत 5, पृ0 9

में ` - गीत 25, `आज नयन के बंगले में ` - गीत 34, `मैंने देखा था, कलिका के `गीत 37 आदि । माखनलाल जी की कई कविताएं ऐसी हैं जिन में एक ही कविता के अन्तरे में अलग-अलग वादों को पिरो दिया गया है । उनि कहीं-कहीं तो एक ही कविता में स्वच्छंदतावाद, छायावाद, और रहस्यवाद का पुट समाया हुआ मिलता है । इस तरह की कविताओं में एक कविता है - `जिस ओर देखूं बस` - गीत 14 । जहां इस पूरी कविता में हम छायावादी आवरण में लिपटा हुआ पाते हैं, वहीं तीसरे अन्तरे में स्वच्छंद कविता के अन्तर्गत एकान्त प्रणय की झलक मिलती है तथा बीच के अन्तरे में रहस्यवादी गीत की प्रतीति होती है । वो बीच का अन्तरा है --

`छुपने लगूं तुझसे मुझे
तुझ बिन ठिकाना है नहीं,
मुझसे छुपे तू जिस जगह
बस मैं पकड़ पाऊं वहीं ।`[1]

हालांकि यह कविता प्रेमपरक है, परन्तु इसमें निहित रहस्यवादी पुट एक बार बरबस ध्यान आकर्षित करता है । यों रहस्यवादी कविताएं प्रेमपरक ही पायी गई हैं । चाहे वह प्रकृति के साथ जोड़ी गई हो या असीम केसाथ । इसी प्रकार एक कविता है --

`मैं तो होश समेट न पाई
तेरी स्मृति में प्राण छुपाया,
युग बोला, तू अमर तरुण है
मति ने स्मृति आंचल सरकाया ।

----

1. हिमतरंगिनी, पृ0 24

जी में खोजा, तुझे न पाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?'[11]

ऐसा लगता है जैसे हमारे कवि कितने भावों के आवेगों को तारतम्यता के साथ जोड़ नहीं पा रहे हों । इन क्षणों या चित्रों के पीछे कभी-कभी सौन्दर्य पाठक के लिए एक पहेली के रूप में आता है । सम्भवत: ऐसा तभी होता है, जब कवि के मन में चित्रों को व्यक्त करने की अतृप्ति बनी रहती है । यानि हृदय की अतल गहराईयों की अभिव्यक्ति के पश्चात् भी कवि असंतुष्ट रहता है । उसके अन्दर भावनाओं के सैलाब जो भरे पड़े हैं और वे कल्पना के साथ मिल कर यथार्थ का आंचल थामे हैं । कल्पनाओं की कुहेलिका से निकल कर वैयक्तिक चेतना और मानवीय संवेदना की डोर को एक-दूसरे से जोड़ने के दरम्यान कवि की कविताओं में कुछ अस्पष्टता की झलक मिलती है । इसके कारणों को स्पष्ट करते हुए दिनकर जी ने लिखा है - 'अस्पष्टता और धुंधलेपन का कुछ कारण यह भी है कि माखनलाल जी की कल्पना प्राय: रहस्य-वाद की सीमा-भूमि पर विचरण करती है । एक तो भक्त होने के कारण रहस्यलोक से उनका सहज सम्बन्ध तो है ही; दूसरे, शैली से वे प्रथम कोटी के व्यक्तिवादी हैं । अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों से आत्मकथा की रचना करने वाले हिन्दी में और भी कई श्रेष्ठ कवि विद्यमान हैं, किन्तु माखनलाल जी की यह भी एक प्रचण्ड विशेषता है कि वे समूह की भावनाओं को भी वैयक्तिक अनुभूति का रूप देकर ही व्यंजित करते हैं । राष्ट्र की वेदना उनके मुख से निजी वेदना के रूप में प्रकट होती है तथा उसमें वही माधुर्य, विदग्धता एवं अस्पष्टता विद्यमान रहती है जो प्रधानत:

---

11. हिमतरंगिनी, पृ0 34

आत्मकथाओं के गुण हैं । स्थूल जगत् की भी जो तस्वीर वे उठाते हैं, संसार को उसका दर्शन उनके स्वप्नों के आवरण में ही होकर मिलता है । दमन की यातनाओं के बीच जब वे चीखते हैं, तब उनकी चीख को हम सीधे नहीं सुन पाते, वरन् हमें तो आराध्य मन्दिर से टकराकर लौटने वाली उसकी प्रतिध्वनि ही सुनाई पड़ती है ।'[12]

इसी सन्दर्भ में उनकी अगली कविता है --

'चलो छिया-छी हो अन्तर में ।
बिखर बिखर उट्ठो, मेरे धन
भर काले अन्तस पर कन-कन,
श्याम-गौर का अर्थ समझ लें
जगत पुतलियां शून्य प्रहर में
चलो छिया - छी हो अन्तर में ।'[13]

यहां कवि ने जगत और नियंता के सम्बन्ध के लिए जो बिम्ब बांधने की कोशिश की है, वो अबूझ पहेली इसलिए बन गई है कि कवि ने प्रकृति-नियंता और मानवीय चेतना को एक साथ उद्‌बोधन स्वर देने जैसे विराट बिम्ब या एक विराट् जगत् को उठाने की कोशिश की है । यहां हमारे कवि कई तरह के भावों या मनोवेगों को तारतम्यता नहीं दे पाए हैं, जिससे रहस्य का आवरण गहरा हो गया है । वस्तुत: यहां कवि मीरा की तरह प्रेम का अर्थ समझने की कोशिश कर रहे हैं । वे श्याम-गौर कृष्ण और राधा भी हो सकते हैं । इसी कविता में आगे माखनलालजी

----

12. दिनकर - मिट्टी की ओर, पृ0 121
13. हिमतरंगिनी, पृ0 11

कबीर के अन्दाज में लिखते हैं --

`चमकीले किरनीले शस्त्रों
काट रहे तम श्यामल तिलतिल
ऊष्मा का मरघट साजोगे ?
यही लिख सके चार पहर में ?`[14]

`ऊष्मा का मरघट साजोगे ? / यही लिख सके चार पहर में ?` उपरोक्त पंक्तियों के विरोधाभास को नि:शंक होकर लिखा है हमारे कवि ने । यही नि:शंक होकर विरोधाभास को प्रस्तुत करने की ताकत कबीर में भी थी । वजह सिर्फ यही है कि सुनने या पढ़ने वालों को भले ही इस तरह की पंक्तियां रहस्यवादी लगती हों, लेकिन स्वयं इन कवियों के लिए कुछ भी रहस्य न था, सब कुछ स्पष्ट और सूझ-बूझ के साथ लिखा जाता था । जैसे उन्होंने एक और कविता लिखी -- `सूझ, का साथी /
`मोम - दीप मेरा ।` इस कविता के सम्बन्ध में स्वयं कवि का कहना है -`कभी हमारा जागरण होता है, कभी जब हम अपनी सूझों समेत सो जाते हैं तो सपने जाग उठते हैं । उस समय मानो प्रेरणा और पुरुषार्थ मशक्कत से करते नजर आते हैं । लगता है जागरण मन का काम है तो सोना मन का निर्माण । इसलिए प्रात:काल जब आंखें खुलती हैं, हमारी ही आंखें नहीं खुलतीं, हमारे विचारों की, हमारे आदर्शों की, हमारे निर्माणों की, हमारे हृदय की कसमसाहट की, हमारी प्रज्ञा और उपयोगिता की भी आंखें खुल उठती हैं । आगे वे लिखते हैं -`यही समय है जब बड़प्पन का बोझ उतार कर फेंकने की तबीयत होती है । सूरज की ओर देखने की इच्छा नहीं होती और घने

---

14. हिमतरंगिनी, पृ० 12

अंधकार में यह कहने को तबीयत चाहती है कि वह मोमदीप धन्य है जिसका प्रकाश चाहे सीमित हो, किन्तु जो न तो तारों की तरह दूर पड़ती है, न तारों ही की तरह उसका प्रकाश मटियाला होता है कि जिसमें कुछ पढ़ा न जा सके ।'[15]

यह तो थी कवि की उस समय की मन:स्थिति, जब वे उक्त कविता लिखे होंगे ; किन्तु इतने स्पष्ट मन:स्थिति में भी यह कविता कुछ अंशों में रहस्यवादी बन पड़ी है । जैसे --

'जब चाहूं जाग उठे
जब चाहूं सो जावे,
पीड़ा में साथ रहे
लीला में सो जावे ।
मोम - दीप मेरा ।'[16]

महादेवी वर्मा को जिन अर्थों में रहस्यवादी माना गया है, लगभग उसी अन्दाज में माखनलाल चतुर्वेदी भी रहस्य का झीना आवरण लाते हैं । अपनी पीड़ा में धीरे-धीरे पिघलते आंसू जो व्यथित हृदय से पिघल कर आते हैं । यहां दीप (लौ) हृदय का प्रतीक तथा मोम आंसू का प्रतीक है । यहां तक कि उपरोक्त पंक्तियों को कहने का अंदाज भी इनका और महादेवी जी का लगभग एक सा है । विशेषकर 'पीड़ा में साथ रहे ' जैसी पंक्ति ; परन्तु चतुर्वेदी जी की अपनी विशिष्टता वहां उभर कर आती है जहां वे कहते हैं --

---

15. माखनलाल रचनावली, भाग 2, पृ0 315
16. हिमतरंगिनी, पृ0 14

`यह गरीब, यह लघु-लघु
प्राणों पर यह उदार
बिन्दु - बिन्दु
आग - आग
प्राण - प्राण
यज्ञ - ज्वार
पीढ़ियां प्रकाश-पथिक
जग - रथ - गति - चेरा ।
मोम - दीप मेरा ।`[17]

संदर्भ क्या है ? यह जग रथ है और गति - समय, उसका चेरा - दास या सारथी है । यह बिम्ब अनूठी है । यहां मालनलाल जी के कवि-व्यक्तित्व की विशिष्टता के मुताबिक गरीब, लघु-प्राण, उदार, आग, यज्ञ-ज्वार, पीढ़ियां, प्रकाश - पथिक जैसे शब्द स्वयं कवि की अलग पहचान बताते जाते हैं । यानी ऐसे शब्द खुद ही कविता का भी भेद खोलते प्रतीत होते हैं और इनकी शैली वैशिष्ट्यता के साथ यह रहस्य खुलता जाता है कि इनके रहस्यवादी स्वर में भी ओज छिपा है जो यथासम्भव प्रकट हो ही जाता है ।

मालनलाल जी के गीत `मोम दीप मेरा` की ही तरह रहस्य आवरण में लिपटी महादेवी भी आत्मिक ज्ञान रूपी दीप को जगाते हुए कहती हैं --

---

17. हिमतरंगिनी, पृ० 15

'दीप मेरे जल अकम्पित,

धुल अचंचल ।

मोह क्या निशि के वरों का,

शलभ के झुलसे परों का

साथ अक्षय ज्वाल का

तू ले चला अनमोल सम्बल ।'[18]

या फिर 'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो । या 'धूप सा तन दीप-सी मैं ।' इन सभी पंक्तियों में हमारे कवि की उपरोक्त कविता का विचार साम्य देखते बनता है। यहां तक कि माखनलालजी की 'पीड़ा में साथ रहे / लीला में खो जावे ।' जैसी पंक्तियों के साथ भाव-विचार साम्य रखने वाली महादेवी जी की निम्नलिखित पंक्तियां तो देखते ही बनती हैं --

'उर का दीपक । चिर,स्नेह अतल,

सुधि-लौ शत झंझा में निश्चल,

सुख से भीनी दुख से गीली

वर्ती सी सांस अशेष रही ।'[19]

यों तो 'हिमतरंगिनी' में रहस्यवादी गीत और भी कई हैं परन्तु गीत 54 की कुछ पंक्तियां रहस्यवादी प्रेमगीतों में, विशेषकर महादेवी जी की तरह ही आंसुओं का वरण स्वेच्छा से करती हैं । जैसे --

'जरा तैरता हूं, तो

डूबों हुओं में,

----

18. महादेवी वर्मा - दीपशिखा, पृ0 69

19. वही, पृ0

अरे डूबने दे
मुझे आंसुओं में ।'[20]

इसी प्रकार एक अन्यत्र गीत 13 में ये 'कबीरदास की उलटी वाणी - बरसे कम्बल भीजे पानी' की याद दिलाते हैं, प्रकृति के माध्यम से यह कहते हुए कि --

'बिन हरियाली के माली पर
बिना राग फैली लाली पर
बिना वृक्ष ऊगी डाली पर ।'[21]

वैसे भी 'आधुनिक हिन्दी काव्य में जहां प्रकृति में सर्वेश्वरवाद का दर्शन करके उसे सर्वव्यापक चेतना से अनुप्राणित माना गया है और प्रकृति में मानव-जीवन का प्रतिबिम्ब देखा गया है, वहां उसे छायावाद कहा गया है तथा जब प्रकृति से परे जाकर सम्पूर्ण सृष्टि में अव्यक्त तत्व को समाहित मान कर उसके एवं उसके अंश के बीच प्रणय-सम्बन्ध की सृष्टि होती है तो रहस्यवाद आ जाता है ।'[22]

वस्तुत: रहस्यवाद को तर्क और बुद्धि की प्रधानता नहीं मिली है, बल्कि यह भाव-प्रधान है । इसी कारण भावनाओं का रेला कहीं-कहीं इतना आवेगमय होता है कि वर्ण्य-विषय, भाषा विश्लेषणात्मक

---

20. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 90
21. वही, पृ0 23
22. प्रो0 अखिलेश कु0 राय - 'आधुनिक हिन्दी रहस्यवादी काव्य में पं0 माखनलाल चतुर्वेदी' लेख (माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं0 - प्रेमनारायण टंडन)

न होकर गूढ़ हो जाते हैं और सारतत्व में लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता की ही प्रधानता दिखाई देने लगती है । यहीं पर पाठक थोड़ा उलझता है । सौभाग्य से चतुर्वेदी जी की कविताओं में वह उलझन, वह गूढ़ता ज्यादा नहीं है । हां, कहीं-कहीं यह दुरूहता है अवश्य । इसके पीछे छिपे कारणों को एक विद्वान सुलझाते हुए कहते हैं --

'ईश्वर का अव्यक्त अस्तित्व प्रेम के समरूप है तथा यह जगत् प्रेममय है, यह प्रेम ही सर्वोपरि है; यह भाव कवि की उस रहस्यवादी प्रवृत्ति के परिचायक हैं, जिनको वह अपनी सहज भावनाओं द्वारा काव्य में ढालना चाहता है । यह अलौकिक प्रेम जीव और ईश्वर के बीच अभिन्नता का सम्बन्ध पैदा कर देता है । प्रियतम के रूप में ईश्वर से अपने सम्बन्ध की अभिव्यक्ति देखिए --

"चलो छिया - छी हो अन्तर में
तुम चन्दा, मैं रात सुहागिन
चमक-चमक उट्ठें आंगन में ।"[23]

रहस्यवादी काव्य में कवि को उस अलौकिक प्रेम की सर्वव्यापकता पर सन्देह नहीं रहता । 'माखनलाल जी' भी मानते हैं कि --

'जिस ओर देखूं बस
अड़ी हो तेरी सूरत सामने,

---

23. प्रो0 अखिलेश कु0 राय - 'आधुनिक हिन्दी रहस्यवादी काव्य में पं0 माखनलाल चतुर्वेदी' (लेख) । (पुस्तक -'माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' से - प्रेम नारायण टंडन)

जिस ओर जाऊं रोक लेवे
तेरी मूरत सामने ।'[24]

इस प्रकार हम पाते हैं कि 'माखनलाल जी' की रहस्यवादी कविताओं में अलौकिक प्रेम के साथ मानवतावाद की महत्ता को बार-बार स्वीकारा गया है और खुल कर व्यक्त किया गया है । इनके यहां प्रकृति अलौकिक प्रेम या असीम व वैयक्तिक सम्बन्धों की प्रगाढ़ता के लिए मध्यस्थता करती प्रतीत हुई है । कवि के वैष्णव मन ने कृष्ण का आलम्बन लेकर मानवतावाद की एकता व अखण्डता को बरकरार रखने की पुरजोर कोशिश की है । इनका या इस युग के अन्य कवियों का रहस्यवाद मध्ययुग के भक्त कवियों से प्राय: भिन्न है । इनके काव्य संसार में स्वत: और रहस्यवाद को पूर्णरूपेण वैयक्तिकता की तलाश है । आत्मानुभूति की अभिव्यंजना ही छायावादी काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता मानी गई है । छायावाद जीवन और विचारधारा से गहराई में जुड़ा हुआ था । यों तो इस काव्य संग्रह में कवि की आत्मानुभूति ही खुलकर सामने आई है; साथ ही इस आत्मानुभूति की अभिव्यंजना की पद्धति ने इनमें संकलित कविताओं को छायावाद, रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद या प्रगतिवाद की शैली से जुड़ा हुआ साबित करवाया है । कवि माखनलाल चतुर्वेदी जी जीवन के अनुभवों के कवि हैं । उन्होंने अपनी कविताओं के द्वारा मानवता, वैयक्तिकता, जीवन और विचारधारा को कर्तव्य की डोर में पिरो कर राष्ट्रहित के लिए समर्पित कर देना चाहा । हमारे कवि बहुत पहले से ही छायावादी कविताएं लिख रहे थे । अत: बहुत से विद्वान इन्हें छायावादी कविताओं के अग्रदूत मानते हैं । इसी सन्दर्भ में प्रो० श्रीकान्त जोशी का कहना है -' 1913 में लिखी गयी और उस युग के प्रबुद्ध मासिक पत्र 'प्रभा'

---

24. हिमतरंगिनी, पृ० 24

में प्रकाशित `प्रेम` शीर्षक माखनलाल जी की उपर्युक्त कविता की ओर यहां ध्यान दिया जाना अनिवार्य है । छियासठ पंक्तियों की इस परम वैष्णव-रचना में संभवत: स्वयं वृन्दावन ही अवतरित हो उठा है - अभिव्यक्ति, भावबोध प्रकृति - स्पर्श, रहस्यमयता और संकेतशीलता की दृष्टि से यह और इस तरह की पूर्व में और बाद में लिखी गयी अनेक रचनाएं माखनलाल जी को उस युग के छायावाद का पुरस्कर्ता सिद्ध करती हैं । यही वजह है कि सर्वश्री सुमित्रानन्दन पन्त, शान्तिप्रिय द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, प्रभाकर माचवे, विनयमोहन शर्मा, नगेन्द्र और हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि अनेक सिद्ध समीक्षकों ने उन्हें छायावाद के प्रवर्तक के रूप में मान्यता दी है ।`[25]

`हिमतरंगिनी` में छायावादी काव्य की बुनावट, विशिष्टता और महत्ता की ओर प्रकाश डालने से पहले छायावाद और माखनलाल जी के सम्बन्ध में दिनकर और माचवे जी के मन्तव्यों पर विश्लेषणात्मक ढंग से एक नजर डालना आवश्यक जान पड़ता है --`छायावाद की कुहेलिका का आरम्भ सबसे पहले (माखनलाल की) रचनाओं में हुआ था । ... उसका सर्वाधिक गहन रूप भी उन्हीं की रचनाओं में विद्यमान है । बहुत अर्थों में वे छायावाद के अग्रदूत थे । द्विवेदी काल की इतिवृत्तात्मकता को भेद कर सन् 1913 ई० अथवा उसके पूर्व से ही वे हिन्दी के वक्षस्थल पर नयी अभिव्यंजना की सुरम्य रेखाएं खींचने लग गये थे ।`[26] इतना ही नहीं, प्रभाकर माचवे तो माखनलाल जी को पहले के विद्वानों द्वारा छायावाद के अग्रदूत न माने जाने का सीधा कारण बताते हुए कहते हैं --`मेरे मत

---

25. श्रीकान्त जोशी - माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० 61-62
26. वही, पृ० 62

से छायावाद के पहले कवि पं० माखनलाल चतुर्वेदी हैं । उनकी रचनाएं बहुत काल तक प्रकाश में न आ सकीं, उनके संकोची स्वभाव के कारण ।'[27]

इस प्रकार हम देखते हैं कि माखनलाल जी को छायावाद के अग्रगण्य कवि मानने में उपरोक्त विद्वानों में मतैक्यता है । छायावादी कवियों के एक स्तम्भ `पन्त` ने तो इन्हें `छायावाद के पुरोधा` कहा है । हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी माखनलाल जी के छायावाद के कवियों में अग्रदूत होने की पुष्टि अपने शब्दों में इस प्रकार की है -- `कविवर माखनलाल चतुर्वेदी की नवीन राष्ट्रीय भावना को महनीय गौरव और पूजा की महिमा देने वाली कविताओं से भी भावी वैयक्तिकतावादी कवियों का मार्ग प्रशस्त हुआ । आजकल लोग इन कविताओं को भूल गए हैं परन्तु सत्य यह है कि इन्हीं और इन्हीं जैसे अनेक कवियों ने उस वैयक्तिकता प्रधान काव्य की भूमि तैयार की, जिसे छायावाद कहा जाता है और जो आज हिन्दी कविता का गौरव स्वीकार किया जाने लगा है ।'[28]

माखनलाल जी की महत्वपूर्ण कृति `हिमतरंगिनी` में कुछ कविताएं पूरी तरह छायावादी ढंग की हैं और कुछ कविताओं में अलग-अलग भावों के साथ हर अन्तरे में स्वत: ही वाद भी बदलते हैं । यानि उक्त कविता के किसी अन्तरे में छायावादी काव्य-संसार तो किसी भी में स्वच्छंद भाव-धारा या किसी में रहस्यवाद का आवरण मिलेगा और किसी

---

27. श्रीकान्त जोशी - माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० 62
28. रचनावली, भाग 7 की भूमिका से ।

अन्तरे में कवि प्रगतिवादी शैली की वास्तविक दुनिया में विचरण करता नजर आता है । वस्तुत: इन्हीं वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए दिनकर जी कहते हैं -'माखनलाल जी की ऐसी रचनाएं बहुत थोड़ी हैं जिनकी विहार भूमि आदि से लेकर अन्त तक एक ही भाव-लोक में हो । आसक्ति से आरम्भ करके वे बलिदान में अन्त करते हैं और आक्रोश से चलकर वे करुणा में विश्राम लेते हैं । यह भी सम्भव है कि एक ही स्थल पर प्रेम, बलिदान, करुणा और उत्साह के सिवा कितने ही अन्य अप्रत्याशित भाव भी एकत्र मिल जायें ।'[29]

बहरहाल कुछ ऐसी कविताएं जो छायावादी रचना-प्रक्रिया के अन्तर्गत आती हैं, वे हैं -'जो न बन पाई तुम्हारे ' गीत 1,'बोल राजा स्वर अटूटे ' - गीत 18, हे प्रशान्त तूफान हिये में ' - गीत 43, 'मैं नहीं बोली कि बोला ' - गीत 49, 'अपनी जबान खोलो तो ' - गीत - 52, 'पुतलियों में कौन ' - गीत 50, 'हां याद तुम्हारी आती थी ' - गीत 51, 'वह टूटा जी जैसा तारा ' - गीत 46, 'आ मेरी आंखों की पुतली' - गीत 45, 'आते आते रह जाते, यह चरण ध्वनि धीमे - धीमे ' - गीत 40, 'सजल गान , सजल तान', गीत 39, 'मत झनकार जोर से', गीत 28, 'हरा-हरा कर, हरा 'गीत 26, 'सुलझन की उलझन है', गीत 24, 'नाद की प्यालियों, मोद की ले सुरा ' गीत 23, 'मन धक-धक की माला गूंथे ', गीत 21,'ऊषा के संग , पहिन अरुणिमा', गीत 20, 'उस प्रभात तू बात न माने', गीत 19, 'बोल तो किसके लिए मैं ' - गीत 16, 'धमनी से मिस धड़कन

---

30. दिनकर - मिट्टी की ओर, पृ0 121

की` - गीत 11, `सूफ का साथी`, गीत 8, `यह किसका मन डोला` - गीत 5, `सोने को पाने आये हो ?` - गीत 3, `तुम मन्द चलो ` - गीत 2, आदि।

`हिमतरंगिनी` काव्य संग्रह की शुरुआत ही हुई `जो न बन पायी, तुम्हारे/गीत की कोमल कड़ी ` से । इसमें कवि ने अपने आराध्य को मनुहारों द्वारा रिझाने की कोशिश की है । इसमें कवि ने अपने अन्तर्मन के कोने-कोने में छुपे भावों को उकेरा है । और अपने आराध्य पर साधक को कहीं झुंझलाहट तो कहीं आराध्य के त्याग पर प्यार और आदर आया है । इसी प्रकार `तुम मन्द चलो` गीत में कवि अपने मनोविकारों के प्रति ईमानदार रहने और सीमा में रहने की शिक्षा देते हुए से दिखाई देते हैं । यात्री अपनी साधों को मर्यादित ढंग से पूरा करने की सलाह देते हैं । इसी कविता में कहीं ये छायावादियों की तरह स्वच्छंदता प्राप्त करने को आतुर तो दिखते हैं परन्तु अपनी इस प्रक्रिया की गति धीमी ही रखना चाहते हैं, यह कहते हुए --

`प्रहरी पलकें ? चुप, सोने दो ।
धड़कन रोती है ? रोने दो ।
पुतली के अंधियारे जग में -
साजन के मग स्वच्छन्द चलो ।
पर मन्द चलो ।`[30]

अर्थात् स्वच्छन्दता की चाह रखते हुए भी स्वयं के लिए स्वयं से अनुशासन

---

30. मालनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ 0 3

के समर्थक हैं - कवि । तभी तो कह उठते हैं `चुप, सोने दो ।` क्योंकि `पुतली के अंधियारे जग में ` - अचानक प्रकाश भर जाना एक उथल-पुथल मचाना होगा ; इसलिए पलकें प्रहरी का काम कर रही हैं । यह सच है कि छायावादी काव्य में विषय-वस्तु के साथ भावों की विविधता है ।सम्भवत: इसीलिए इन भावों को व्यक्त करने यानी अभिव्यंजना के लिए एक विशिष्ट पद्धति उभर कर सामने आई ।तभी तो कहा गया कि -`छायावाद केवल अभिव्यंजना की विशेष प्रणाली या प्रतीक-पद्धति नहीं है, बल्कि उसमें ऐसे सूक्ष्म और नवीन भावों की योजना भी हुई है, जिनकी अभिव्यक्ति इस विशेष शैली के अतिरिक्त अन्य किसी पद्धति से नहीं हो सकती थी । नवीन आभ्यान्तर अनुभूति को व्यक्त करने के लिए नवीन अभिव्यंजना-शैली आवश्यक थी और इसी शैली के काव्य का नाम छायावाद पड़ा ।`[31] जाहिर है उपरोक्त कथ्य की तरह सूक्ष्म और नवीन भावों की योजना तथा अभिव्यक्ति की विशिष्ट शैली वाले सभी गुण माखनलाल जी की कविताओं में विद्यमान हैं । छायावादी काव्य प्रणाली की जो सबसे अनूठी और मनमोहक विशेषता है, वह है प्रकृति के साथ एकाकार होकर विविध मनोभावों की सहज-स्वच्छंद अभिव्यक्ति । यही इस पद्धति का सौन्दर्य-बिन्दु भी है । `हिम तरंगिनी` में भी हमारे कवि `माखनलाल जी` द्वारा लिखित ऐसी अनेकों कविताएं हमें देखने को मिलती हैं । उदाहरण स्वरूप यहां एक-दो बानगी देना आवश्यक जान पड़ता है --

`तुझे पुकारूं तो हरियातीं -
ये आहें, बेलों - तरुओं पर,

---

31. रा० कृ० स० - हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ० 251

तेरी याद गूंज उठती है
नभ-मंडल में विहगों के स्वर'[32] ।

या फिर एक अन्य कविता में भावों का गुम्फन देखते बनता है --

'फिर पंखड़ियां ऊग उठीं वे
फूल उठी, मेरे कनमाली !
कैसे, कितने हार बनाती
फूल उठी जब डाली-डाली !
सूत्र, सहारा , ढूंढ़ न पाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?'[33]

ऐसे ही एक और गीत की बानगी यों है --

'जब तुम आकर नभ पर छाये
'कलानाथ' बन चंदा बाबू,
मैं सागर पद छूने दौड़ा
ज्वार लिये होकर बेकाबू ।'[34]

इसी प्रकार छायावादी कविता की एक अनूठी मिसाल है 'पुतलियों में कौन ?' पंत की मौन निमंत्रण के तर्ज से मिलती जुलती कविता

---

32. मालनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 28
33. वही, पृ० 33
34. वही, पृ० 38

होने का एहसास कराती है उपरोक्त कविता । कवि यहां बिलकुल छाया-वादी शैली में विचरण कर रहा है । छायावादी प्रकृतिपरक प्रेमगीतों में यह कविता पंत की कविता के समानांतर जा बैठती है । यह महादेवी जी के गीतों की तरह भावनाओं से संपृक्त तो है ही, साथ ही इनकी अपनी एक अलग शैली है । यहअलगाव भाषा की सहजता में है । इतने सहज भाषा-शैली में एक साथ भावनाओं की गहराई को छायावादी शैली में व्यक्त करना और उस भाषा-शैली में से निकल कर अपनी एक अलग सहज विशिष्टता कायम रखना अद्भुत कला है । छायावादी अन्य कवियों ने शब्दों को काट-छांट तराश कर बनाया था । नई कोमलता, नई मृदुलता शब्दों को अलग ही ढंग से स्वच्छंद कर गई थी । अर्थात् छायावाद के चार स्तम्भ कहे जानेवाले कवियों ने भावों के साथ जहां शब्द-विन्यास या शब्दों की बुनावट पर, उसके गठन पर भी जोर दिया; वहीं माखनलाल जी इन सब चीजों से अलग हट कर सहज शब्दों में सब कुछ कह देने की क्षमता रखते थे । हालांकि कुछ आलोचकों ने इनकी कविताओं को दुरूह व जटिल कहा है; किन्तु उक्त बातें हमेशा लागू नहीं होती हैं । यह अवश्य हुआ है कि जब-जब इनकेनिजी जीवन ने संघर्ष झेला, तब-तब इनकी कविताएं, भावनाएं व शब्दों के साथ वह संगत न बैठा सकीं । वह सरलता जीवन और कविताओं से जब गायब हुआ, कविताएं दुरूह हो उठीं । वह भी परिस्थितिवश ।

इनकी छायावादी कविताओं में कहं तो प्रेमगीत हैं और कहीं-कहीं प्रेम में विरह की तान है । जैसे - उनकी एक कविता है --

"हां, याद तुम्हारी आती थी,
हां याद तुम्हारी भाती थी,...

\+ +

तुम धक्-धक् पर नाच रहे हो,
सांस-सांस को जांच रहे हो,
कितनी अलः सुबह उठती हूं,
तुम आंखों पर चू पड़ते हो ;'[35]

इसी सन्दर्भ में लगभग देखें तो एक अलग गीत है 'कैसे मानूं तुम्हें प्राण-धन' । इसमें प्रेम भी है, विरह भी है, मनुहार भी और वेदना भी छुपी हुई है - 'दरद और दरदी के रिश्तों-/ को पगली मीरा क्या जाने ।' इस गीत में आराध्य के लिए प्रेम-विरह, मनुहार आदि तो है ही, परन्तु ऐसा आभास होता है कि ये अपनी दिवंगता पत्नी के लिए भी लिखे हैं । जैसे --

'पास रहो या दूर, कसक बन -
कर रहना ही तुमको भाया,
किन्तु हृदय से दूर न जाने
कहां-कहां यह दर्द उठाया ।'

+ +

'मेरी साधें पथ पर बिछीं -
हुईं, करती हों प्राण-प्रतीक्षा,
मेरी अमर निराशा बनकर
रहे, प्रणय-मंदिर की दीक्षा ।'[36]

यहां उपरोक्त चारों पंक्तियां पत्नी के लिए भी हो सकती हैं और आराध्य

---

35. हिमतरंगिनी, पृ0 85
36. वही, पृ0 76-77

के लिए भी। इसी प्रकार नीचे की चार पंक्तियां भी पत्नी के लिए एक कसक भरा गीत होने का आभास कराती हैं । प्रणय को मंदिर मान लेना ही वह विलक्षणता है जिससे इस गीत में भक्तिगीत का भी भ्रम हो जाता है ।

छायावादी रचना-प्रणाली की एक मुख्य विशेषता रही है वैयक्तिकता और आत्माभिव्यक्ति । इसी आत्माभिव्यक्ति के अन्तर्गत जो बात सबसे मुख्य रूप में खुल कर आई, वह है कवि द्वारा अपने मुख से अपने प्रेम-गीत गाकर, स्वीकारोक्ति या प्रेम-प्रदर्शन की स्वच्छंदता । यह स्वच्छंदता द्विवेदी युगीन कवियों में इतने खुले रूप में नहीं आई थी, बल्कि वहां अपने प्रेम की स्वीकारोक्ति तो दूर की बात थी, सामान्य प्रणय-वर्णन में भी एक आवरण, एक ओट या किन्हीं बाहरी चीजों की सहायता ली जाती थी । माखनलाल चतुर्वेदी के यहां प्रणयभावना को स्वच्छंदता के साथ व्यक्त किया गया है, बिना लाग-लपेट के । यहां भावों की तीव्रता खुलकर सामने आई है । भावों के आवेग को रोकने या मोड़ने नहीं दिया गया । `हिमतरंगिनी` काव्य-संग्रह की इस अर्थ में अपनी विशिष्ट महत्ता है कि इसमें कवि द्वारा पत्नी की मृत्यु पर लिखी गई कविताएं हैं - जिन्हें शोक गीत कहना ज्यादा उचित होगा । छायावादी कवियों में शोकगीत 'निराला' ने भी लिखा है अपनी पुत्री की मृत्यु पर । असल में उस युग में आत्माभिव्यक्ति और `मैं` का इतना विस्तार हुआ, वैयक्तिकता को इतनी महत्ता मिली कि उस युग के कवियों ने अपने अनगिनत अनमोल भावों को बड़े मनोयोग से काव्य में उंडेल दिया ।

नारी के लिए एक आदर सम्मत अभिव्यंजना छायावादी काव्य की विशिष्टता रही है । माखनलाल जी द्वारा लिखे गीतों, चाहे वो शोक गीत हों या पत्नी की याद में लिखी गई विरह-गीत या प्रणय-गीत,

सब में यही आदर सम्मत अभिव्यंजना पद्धति अपनाई गई है । वस्तुत: इस प्रकार की रचनाओं से कवि व्यक्तित्व का एक सशक्त व मजबूत पक्ष उजागर होता है । मालनलाल जी के प्रणय गीतों की नायिका उनकी अपनी पत्नी है और उन सब गीतों में कहीं प्यार-मनुहार को याद किया गया है, कहीं विरह-विदग्ध कवि (पुरुष हृदय) की भी एक झलक मिलती है । यानी पत्नी के लिए शोकाकुल विरहाकुल पुरुष (कवि) के हृदय की दशा पाठक के लिए एक अद्भुत और विलक्षण अनुभूति बन गई है । जब भी कोई सहृदय `हिमतरंगिनी` के इन गीतों को एक बार पढ़ लेगा तो शायद ही उम्र भर उसे भूल पाए । ऐसी कविताएं और मालनलाल जी के (बलिदानी, राष्ट्रीय कवि के स्वरूप से हटकर) इस अलग स्वरूप को भुला पाना आसान नहीं है । हो सकता है पाठक इन गीतों के बोल भूल जाए, पर उसमें छुपे भाव हमेशा उसके कानों में गीत की तरह गूंजते रहेंगे । यही महत्वपूर्ण पहलू `हिमतरंगिनी` और कवि दोनों की विशिष्टता या महत्ता बताती है । दोनों (कवि और कृति) को एक विस्तृत आयाम देती है और ऊंचाई की ओर ले जाती है । यहां उन कविताओं के नाम व उसके बोल की चर्चा आवश्यक है । वे कविताएं हैं -'वे तुम्हारे बोल,' 'भाई छेड़ो नहीं मुझे,' 'चलो क्रिया-ही हो अन्तर में,' 'ऊषा के संग पहिन अरुणिमा,' 'मैं नहीं बोली कि वे बोला किये,' 'हां याद तुम्हारी आती थी' आदि दाम्पत्य प्रेम केउत्कृष्ट उदाहरण हैं । पत्नी के बोल, प्यार और स्नेह-सिहरन को जब कवि नेयाद किया तो लिख डाला --

"वे तुम्हारे बोल ।
वह तुम्हारा प्यार चुम्बन,
वह तुम्हारा स्नेह-सिहरन .....

\+ +

आज जब
तुव युगल-भुज के

द्वार का
मेरे हिये में —
है नहीं उपहार,
आज भावों से भरा वह-
मौन है, तव मधुर स्वर सुकुमार !"[37]

यहां प्रसाद, पंत की शैली की याद आती है । शब्दों का संयोजन व बिम्ब योजना देखकर कोई नहीं कहेगा कि ये छायावादी कवि नहीं हैं या यह कविता छायावादी नहीं । पुन: जब वे आगे इसी कविता में कहते हैं -

"आज तुम होते कि
यह वर मांगता हूं
इस उजड़ती हाट में
घर मांगता हूं ।"[38]

तब लगता है कि श्राद्ध तिथि पर लिखे गए इस शोक-गीत में कवि का हृदय कितना व्याकुल है । इसी व्याकुलता में कवि अपने भावों की आकुलता लिए दु:ख की चरम सीमा पर पहुंच जाता है -

"कल्पना पर चढ़
उतर जी पर
कसक में घोल,
एक बिरिया,
एक बिरिया,
फिर कहो वे बोल ।"[39]

---

37. हिमतरंगिनी, पृ० 18
38. वही, पृ० 19
39. वही

इस पूरी कविता में देखें तो छायावादी शैली के साथ ही हमें प्रगतिवादी शैली भी मिल जाएगी । यानी माखनलाल जी अपने युग में ही अपने युग से काफी आगे की चीज विकसित करने की पृष्ठभूमि बनाते से दिख जाते हैं, अपनी कविताओं के माध्यम से । यहां मुझे इनके प्रगतिवादी होने का सिर्फ भ्रम हुआ हो, ऐसा नहीं है । उनकी शैली - लय और कुछेक शब्दों ने ; देशज शब्दों ने इसे पुख्ता और प्रमाणिक बना दिया है । छायावादियों ने नहीं बल्कि प्रगतिवादियों ने देशज शब्दों का प्रयोग किया है । वे शब्द हैं - फूस कुटिया, उजड़ती हाट, जी दुखता है, एक बिरिया - एक बिरिया, बोल आदि । अर्थात् नागार्जुन आदि प्रगतिशीलों के यहां भी यह शैली-लय भाव अपनाए गए । नागार्जुन ने भी अपनी पत्नी के लिए लिखा है --

"यहां स्मृति-विस्मृति के सभी के स्थान
तभी तो तुम याद आती प्राण,
हो गया हूं मैं नहीं पाषाण !.....

\+ +

सांध्य नभ में पश्चिमांत-समान
लालिमा का जब करुण आख्यान
सुना करता हूं, सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल ।"[40]

कुल मिलाकर छायावाद से लेकर प्रगतिवाद तक का सफर इनकी एक-एक कविता ने तय किया है । अर्थात् इनकी कविताएं वादों से परे निर्विवाद स्वच्छन्द हैं । एक ही कविता में इनके युग की प्रत्येक प्रचलित धारा या वादों की शैलियां समायी हुई हैं । गागर में सागर भरने जैसा काम

---

40. नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएं - सं0 नामवर सिंह, पृ0 28-29

हन्होंने अनायास ही अपनी कविता में किया । एक हद तक अपने युग के अकेले ईमानदार कवि हैं ये,जो पत्नी के लिए कुछ लिखते हैं कविता रूप में । कुछ आलोचकों ने इस मामले में नागार्जुन को पहला कवि माना है (पत्नी के लिए लिखने वाला) पर ऐसा लगता है कि नागार्जुन ने भी जिस किसी व्यक्ति से अगर कुछ सीखा तो वे थे कवि माखनलाल जी । चाहें तो दोनों कवियों के व्यक्तित्व, देशभक्ति, भाषा-शैली, व्यंग्य-प्रहार का लहजा आदि का मिलान भी हम किसी हद तक कर सकते हैं । नागार्जुन की उपरोक्त कविता से माखनलाल जी की 1938 ई० में लिखी एक अन्य कविता की याद आती है -`हां, याद तुम्हारी आती थी` । इसी प्रकार हमारे कवि पत्नी की मृत्यु पर लिखते हैं --

`भाई छेड़ो नहीं मुझे / खुलकर रोने दो ।`

मन की तरलता के उद्गार भी खूब खुलकर बहे उनकी इन पंक्तियों में । जिन्हें हम शायद सिर्फ एक संवेदनशील प्राण मानते हैं उनके लिए ; पर उनके लिए तो यही एक प्राण संवेदना की धुरी है और इस कविता में एक अलग कवि व्यक्तित्व को उभारता है । वह ओज, ललकार, चीत्कार, एकदम ही तरल हो उठा है यहां आकर । संवेदना के इन्हीं प्राणों की देन `हिमतरंगिनी` में संकलित अन्य शोकगीत भी हैं और इन्हीं शोक-गीतों की वजह से `हिमतरंगिनी` की एक अलग विशिष्ट पहचान बनी है ।

वस्तुत: छायावादी काव्य की वे सारी विविधतायें माखनलाल जी के यहां भी मिल जायेंगी - जैसे छायावादी कविताओं के अन्तर्गत राष्ट्रीयता, अध्यात्म या ईश्वर प्रेम, प्रकृति प्रेम, वैयक्तिकता शोकगीत आदि । हिमतरंगिनी में इन सब में से लगभग सारे उदाहरण दर्शाए जा चुके हैं । अध्यात्म का पुट लिए इनकी एक कविता का अंश है --

`किन्तु प्रश्न मत कर, सुलझेगा -
क्योंकर सुलझाने से ?

जीवन का कागज कोरा मत
रख, तू लिख जाने दे ।'[41]

छायावादी शैली में अध्यात्म और भक्ति की कई बानगी देखने को मिलती है । असीम के आगे हृदय हारने पर साहस बटोरने की एक अभिलाषा इस तरह की भी है --

'कठिन पराजय है यह मेरी
छवि न उतर पाई प्रिय तेरी
मेरी तूली को रस में भर
तुम भूलना सिखा दो मालिक ।'[42]

यूं तो `हिमतरंगिनी` में छायावादी शैली में लिखी कविताओं में राष्ट्रीयता के पुट वाली कई कविताएं हैं, लेकिन उदाहरणार्थ यहां एक-दो बानगी ही उचित जान पड़ता है --

'घड़ियां तुम्हें ढूंढती आईं,
बनी कंटीली कारा-कड़ियां,
आग लगाकर भी कहलाईं
वे दृग-सुख वाली फुलझड़ियां ।'[43]

या फिर एक अन्य कविता में वे लिखते हैं --

---

41. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 45
42. वही, पृ0 53
43. वही, पृ0 75

'तू अमर धार गायन की,
श्रुति की तू मधुर कहानी,
भारत मां की वीणा की
तेजोमय करुणा-वाणी ।'[44]

तो यह उनके राष्ट्र प्रेमी वाला रूप ही उजागर होता है । छायावादी काव्य की अन्य विशेषताओं के अन्तर्गत ही प्रकृति का मानवीकरण भी आता है । चतुर्वेदी जी के यहां यह विशेषता भी प्रचुरता के साथ मिलती है । 'हिमतरंगिनी' में प्रकृति के मानवीकरण का एक उदाहरण देखिए -

'जीवन के इस बागीचे में
सुमन खिले, फल भी तो झूले ।'[45]

'जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है ।'[46] अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'हिमतरंगिनी' में प्रगतिवादी ढंग की कविताएं हैं या नहीं ? इतना तो लगभग सभी विद्वान मानते हैं कि मास्तनलाल जी अपने युग की ही नहीं, बल्कि उससे आगे की भी कविताएं लिख गए हैं । अपने काव्य-जीवन के साठ साल में उन्होंने द्विवेदी युग से लेकर प्रगति और प्रयोगवाद तक देखा । लेकिन उनका यह सिद्धान्त न था कि अमुक युग में अमुक वाद चल रहा है तो मेरी इस समय की कविताएं भी इसी वाद के अनुकूल होनी चाहिएं । इस पर कभी उन्होंने जोर भी नहीं दिया ; बल्कि अपनी प्रखर चेतना के साथ-साथ कविताओं की भावना -

---

44. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 83
45. वही, पृ० 31
46. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृतियां, पृ० 70

भाषा, शिल्प-विन्यास, प्रतीक-बिम्ब आदि के साथ उजागर करते चले । अपने युग से आगे की कविता लिखते चले गए । यों तो `हिमतरंगिनी` को पूजा गीत नाम देना चाहा इन्होंने परन्तु इसके काव्य में विविधताएं हैं । हिमतरंगिनी में निहित कहीं-कहीं इनकी कविताएं प्रगतिवादी होने का आभास कराती हैं । कोई-कोई कविता ही पूरी-की-पूरी एक वाद में दिखाई देती है, बाकी तो एक ही कविता के कुछ अंश हमें प्रगतिवादी दिखाई पड़ेंगे ।

वस्तुत: `हिमतरंगिनी` की वे कविताएं या वे अंश जो प्रगतिवादी होने का आभास कराती हैं, उनमें कहीं-कहीं सिर्फ एक-दो पंक्तियां ही ऐसी मिलेंगी और कहीं-कहीं पूरी-की-पूरी कविता । पूजागीत कही जाने वाली पहली ही कविता है - `जो न बन पाई तुम्हारे / गीत की कोमल कड़ी` - इसमें निहित जो दो पंक्तियां हैं -`उन्हें निज उच्चत्व पर जब तरस आया/, भूमि का शत-शत कलेजा उग आया ।`[47] यहां प्रतीकार्थ खुलने पर सब कुछ स्पष्ट हो जाता है । कहीं-कहीं तो शब्दों के प्रयोग और भाषा-बिम्ब आदि के आधार पर `हिमतरंगिनी` की कविताओं में प्रगतिशीलता का पता चलता है और कहीं-कहीं भावों की प्रगाढ़ता इसे दर्शा जाती है --

`तब युग के कपड़े बदल-बदल
कहता था माधव का निदेश,
इस ओर चलो, इस ओर बढ़ो!
यह है मोहन का प्रलय-देश ।`[48]

---

47. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 2
48. वही, पृ० 6

या फिर एक अन्य उदाहरण -

"सिसकियों के सघन वन सी,
श्याम - सी
ताजे, कटे से,
खेत सी असहाय,
कौन पूछे ?
पुरुष या पशु ।"[49]

यहां हम नामवर सिंह के शब्दों में कहें कि -"जिस तरह कल्पनाप्रवण अन्तर्दृष्टि छायावाद की विशेषता है और अन्तर्मुखी बौद्धिक दृष्टि प्रयोगवाद की, उसी तरह सामाजिक यथार्थ दृष्टि प्रगतिवाद की विशेषता है । कविता के क्षेत्र में भी प्रगतिवाद इसी दृष्टि से प्रकृति और मानव को देखता है ।"[50] "हिमतरंगिनी" में यत्र-तत्र दिखाई दे जाने वाली वे कुछ कविताएं और कुछ प्रगतिवादी पंक्तियां हैं --

"ले तेरा मज़हब यह दौड़ा
मौन प्रेम से कलह मचाने
+ + +
मैंने सोचा अपने मज़हब-
में तुम एक बार आओगे,
तुम आये, डूब गए प्रेम में
मेरे गिरे आंसू से ओले ।"[51]

---

49. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 7
50. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, पृ0 86
51. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 25

वस्तुत: लेखक सामाजिक संरचना और विडम्बनाओं को देखते हुए ही लिखता है --

'बाहों में, दौड़-धूप कर
मैंने मज़हब को दुलराया
+ +
मैं बस लौट पड़ा मजहब के
पर्वत से, सागर को धाया,
मानो गंगा का यह सोता
पतनोन्मुखी फन-पथ डोले
+ +
कौन नेह पर मज़हब तोले ।'[52]

कहीं-कहीं हमारे कवि की कविताएं शब्द चयन और लहजे से अपने प्रगतिशील होने का बोध कराती हैं --

'अरे जी के ज्वार, जी से काढ़
फिर किस तौल तोलूं ।'[53]

या फिर -

'बांध-गांठ, कि गांठ छूटी ।
काढ़ जी पर बेल-बूटे ।'[54]

---

52. हिमतरंगिनी, पृ0 26
53. वही, पृ0 28
54. वही, पृ0 32

और कहीं-कहीं भाषा व काव्य-शैली दोनों से प्रगतिशील कविता के अस्तित्व का पता चलता है --

'कान खेंच ले,
पर न फेंक,
गोदी से मुझे उठाकर
कर ज़ालिम
अपनी मनमानी
पर,
'जी' से लिपटाकर ।'[55]

यहां तुक मिलाने की कोशिश भी नहीं की गई है । कहीं-कहीं तो प्रगतिवाद अपनी मूल प्रकृति में यानी अपने सम्पूर्ण काव्यगत स्वरूप में दिखती है --

'फटी बिन्धियां पहिने,
भूखे भिखारी
फ़क्त जानते हैं
तेरी इन्तजारी
बिलखते हुए भी,
अलख जग रहा है
+ +
जरा चुहचुहाहट
तो सुनने को आ जा,

---

55. हिमतरंगिनी, पृ0 46

जो तू यों हकुड़ने -
बिछुड़ने लगेगा
तो पिंजड़े का पंछी
भी उड़ने लगेगा ।[56]

इसके बाद देखें तो 'तू ही क्या समदर्शी भगवान् ?' नामक कविता वैष्णव आस्था वाली होते हुए भी प्रगतिशील सोच को दर्शाती है । आस्था डगमगाने पर आराध्य से जवाब-तलब अधभक्ति नहीं, बल्कि कवि की प्रगतिशील चेतना के विकसित रूप को इंगित करता है --

'फिर क्या तेरा धाम स्वर्ग है
जो तप, बल से व्याप्त
होती है वासना पूरिणी
वहीं अप्सरा प्राप्त ?
+ +
क्या तू ही देता है जग -
को, सौदे में आनंद ?
क्या तुझसे ही पाते हैं
मानव संकट दुख-द्वन्द्व ।'[57]

इसी कविता में आगे वे अपनी डगमगाती आस्था पर काबू भी पा लेते हैं और बड़े विश्वास के साथ कहते हैं --

'माखन पावे वृन्दावन में
बैठा विश्व नचावे

----

56. हिमतरंगिनी, पृ0 48
57. वही, पृ0 50

वह मेरा गोपाल, पतन से
पहिले पतित उठावे ।'[58]

इन्हीं पंक्तियों को ध्यान में रखते हुए रचनावली - 1 की भूमिका में सम्पादक श्रीकान्त जोशी जी लिखते हैं -''प्रभु को ठिकाने पर ला देना' मास्नलाल जी के वैष्णव-दर्शन का प्रमुख अंग था, यही उनकी सखा-भाव दृष्टि थी । इसी में गीता का यदा यदा हि धर्मस्य निहित था। 7 अप्रैल 1937 को उन्होंने लिखा,'जिस गणित से सत् चित् आनन्द की अपेक्षा ग्वाल गंवारों का गोपाल अधिक सेवनीय हुआ, उसी गणित से ग्वाल गंवार, दुखी दीन क्यों न सेवनीय होंगे ' क्योंकि -

वह मेरा गोपाल
पतन से पहले पतित उठावे ।

नास्तिक होकर प्रगतिशील या प्रगतिवादी होने की तुलना में आस्तिक हो कर अपने प्रभु को शोषितों के दरवाजों पर पहुंचा देने वाली यह प्रखर वैष्णव आवाज एक सच्ची आवाज थी ।' प्रभु को ठिकाने पर ला देने जैसी एक और प्रखर आवाज है --

'मेरे मन की जान न पाये
बने न मेरे हामी,
घट-घट अन्तर्यामी कैसे ?
तीन लोक के स्वामी ।'[59]

इसी प्रकार 'महलों को कुटियों पर वारो' पूरी कविता ही

---

58. हिमतरंगिनी, पृ0 51
59. वही, पृ0 68

प्रगतिशीलता के दायरे में आ रही तथा `सजल गान सजल तान` गीत के दो अन्तरे `छू मत आचार्य ग्रंथ ` तथा `संस्कृति का बोझ न छू ` भी इसी वाद को दर्शाते हैं । इसी काव्य संग्रह की एक पूरी कविता ही प्रगतिशील है शैली से --

`अपना आप हिसाब लगाया
पाया महा दीन से दीन ।`[60]

तथा भाषाई तौर पर एक अन्य उदाहरण देखिए --

`और कहानी वाला चुपके
कांस उठा बेचारा ।`[61]

एक अन्य बानगी हम देख सकते हैं --

`मजदूरी के बंधन से उठ-
कर पूजा के प्यार रहो
+ +
मेरी मजदूरी में माधवि
तुमने प्यार नहीं पहिचाना,
मेरी तरल अश्रु-गति पर
अपना अक्तार नहीं पहचाना ।`[62]

या फिर हमारे कवि की एक अन्य कविता है --

---

60. हिमतरंगिनी, पृ0 70
61. वही, पृ0 72
62. वही, पृ0 76

`राज-मार्ग से परे, दूर, पर
पगडंडी को छू कर
अभु-देश के भूपति की है
बनी जहां राजधानी ।`[63]

इसी कविता में कवि द्वारा शब्द-चयन देखिए - `पथ जोहा करती हूं ` यह भाषा छायावादी नहीं है, बल्कि जनजीवन के, निम्न वर्ग के, आम जनता, किसान-मजदूर की दुनिया के शब्द हैं ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि मालतीलाल जी के एक ही काव्य-संग्रह `हिमतरंगिनी` में कवि के जीवन के दौरान साहित्य-जगत् से गुजरे अनेक वादों का पुट समाया हुआ है । यह कवि की अग्रसोची लेखनी और उसकी महत्ता का पुष्ट प्रमाण भी है ।

---

63. मालतीलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 78

अध्याय - तीन

'हिमतरंगिनी' में सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता

सामान्यतया 'हिमतरंगिनी' में लेखक पूजागीत के रूप में आत्मानुभूति को व्यक्त करता हैं। कवि ने यहां अपने निजी पलों को संजोया है। अपने इन्हीं भीतरी संवेदनाओं को जब वे व्यक्त करते हैं, तो वह नितान्त उनका अपना न होकर व्यापक तौर में समाज, राष्ट्र और विश्व स्तरीय होउठता हैं।

माखनलाल जी की कविताओं में जहां तक समाज का प्रश्न हैं, वह उस युग का दर्पण बनकर सामने उभरता है। कवि की सबसे बड़ी महानता वहां दिखती है, जहां वे जनसामान्य के लिए ईश्वर की गुहार लगाते हैं, यह कहते हुए --

'फटी चिन्धियां पहिने,
भूखे भिखारी
फ़क्त जानते हैं
तेरी इन्तजारी।'[1]

'हिमतरंगिनी' के काव्यों का समय, तत्कालीन परिस्थितियां कुछ भिन्न व अन्तराल कुछ लम्बा है। यानी एक-दो साल के अन्दर की कविताएं नहीं हैं, बल्कि 35-36 सालों में लिखी गई कविताएं संग्रहित हैं। अगर हम उन 35-36 वर्षों पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि उस समय देश आजादी पाने के कगार पर था। जाहिर है ऐसे में देशवासियों की यानी समाज की चेतना प्रखर हो चली थी। माखनलाल जी मूलत: राष्ट्र और समाज के दर्द में जीने व उसे ईमानदारी से व्यक्त करने वाले कवि हैं। इसलिए कि ये सिर्फ कवि ही नहीं थे, परतन्त्र भारत के क्रांतिकारी सेनानी तथा समाजसेवी व समाजद्रष्टा भी थे। उस युग के सामाजिक प्राणियों में नई चेतना पैदा करने से लेकर उस समाज की कुरीतियों - बुराईयों व कमियों की तरफ आम जनता का ध्यान दिलाने का काम

----

1. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 48

यह सबसे महत्वपूर्ण समझते थे । शोषितों की चेतना में नई लहर भरने का काम इनकी लेखनी ने बड़ी ही जिम्मेदारी के साथ निभायी । चूंकि यह भारत की स्वतन्त्रता चाहते थे किसी भी कीमत को चुका कर ; चाहे उसके लिए एकमत - एकजुट होकर लोगों को प्राणों की आहुति ही क्यों न देनी पड़े । इस बलिदान के लिए शोषक - शोषितों जैसी सामाजिक विडम्बनाओं-कुरीतियों को खत्म करके भारतीयों में एकजुटता का आह्वान यह अपने ओजस्वी स्वर में करने के परम हिमायती थे । वह यह जानते थे कि देश की स्वतन्त्रता के लिए पहले समाज को कुरीतियों और वैषम्यता की जकड़न से मुक्त कराना होगा । उनकी प्रखर चेतना परिवार-समाज, राष्ट्र और विश्व बन्धुत्व तक का सफर तय करना चाहती थी । इन्हीं सब सन्दर्भों में व तत्कालीन परिस्थितियों में 'हिमतरंगिनी' के गीतों की रचना हुई है । इसलिए कवि की भावनाएं समाज को तथा राष्ट्र को धुरी मानकर अपने विवेकशील चेतना की सीढ़ियां चढ़ती हैं । तभी तो कवि के बोल कभी पूजा-गीत, कभी प्रकृतिगत सौन्दर्य गीत, कभी सामाजिकता व प्रगतिशीलता का पुट लिए गा उठे हैं, तो कभी बलिदानी स्वर में राष्ट्रीयता के गीतों का ओज है । कहीं सामाजिक वेदना की चीत्कार है, कहीं क्षोभ व निराशा है और कहीं भगवत्-शरण में जाकर साहस-शौर्य बटोरने की आशा । कहीं-कहीं तो हमारे कवि सामाजिक असंगतियों, परतंत्र राष्ट्र की वेदना की टीस को महसूस कर अपने आराध्य से प्रश्न कर बैठते हैं और न्याय की गुहार लगाते हैं --

'तू ही क्या समर्थी भगवान् ?
क्या तू ही है, अखिल जगत् का
न्यायाधीश महान् ?'[2]

---

2. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 50

कहीं इसी न्याय के लिए जेल में सजा काट रहे कवि का आन्दोलित हृदय थक कर वैष्णव भक्ति की ओट में जाता है --

"पत्थर के फर्श, कगारों में
सीखों की कठिन कतारों में
खंभों, लोहे के द्वारों में
इन तारों में दीवारों में
+ +
कुंडी, ताले, संतरियों में
इन पहरों की हुंकारों में
+ +
जिस ओर लखूं तुम ही तुम हो
प्यारे इन विविध शरीरों में ।"[3]

या फिर ईश्वर प्रेम में ही ये किस प्रकार जन-जन की आह को इंगित करते हैं, देखने लायक है --

"आ मेरे धन, धन के बंधन,
आ मेरे जन, जन की आह ।
आ मेरे तन, तन के पोषण,
आ मेरे मन, मन की चाह ।"[4]

कुलमिलाकर परोक्ष-अपरोक्ष रूप में 'हिमतरंगिनी' की कविताएं - चाहे वे पूजागीत हों, चाहे प्रणयगीत, चाहे वेदनागीत या शोकगीत - वे

---

3. हिमतरंगिनी, पृ० 91
4. वही, पृ० 71

समाज, राष्ट्र और विश्वहित के दायरे में घूमती हुई प्रतीत होती हैं। कवि जहां भक्तिगीत गाता है, वहां भी सामाजिकता का ही एक अंश हमें देखने को मिलता है; क्योंकि भगवद्-भजन करके कवि सामाजिक उत्थान और सुख-शांति चाहता है। भगवद्-भजन समाज की धार्मिक देन है और समाज कल्याण के लिए ही है। भले ही साधक भगवद्-भक्ति के समय अपने आराध्य के पास सिर्फ अपनी आत्मा, अपने स्व को लेकर जाता है, किन्तु बाद में उसमें व्यापकता आ जाती है। तब साधक की भक्ति-भावना कभी-2 एक विशेष समूह या समाज के लिए अर्पित हो जाती है। साधक अपने विशेष प्रयोजनों में अपने चारों ओर उस ईश्वर को ही पाता है।यह भी एक सामाजिक दृष्टिकोण ही है। या फिर, कवि जब यह कहता है -

'तुही है बहकते हुओं का इशारा
तुही है सिसकते हुओं का सहारा
तुही है दुखी विलखों का 'हमारा'
तुही भटके भूलों का है धुर का तारा।'[5]

तो पूरे समाज की दशा को अपने स्वानुभूति में मिलाकर देखता है। इस प्रकार की कविताएं ही कवि के सामाजिक दृष्टिकोण की ओर इशारा करती हैं। सामाजिक दशा को इंगित कर कवि ने अन्य गीत भी गाए हैं --

'दुर्गम हृदयारण्य, दण्ड का -
रण्य घूम जा, आजा

----

5. हिमतरंगिनी, पृ0 79

मति भिल्ली के भाव-बेर
हां जूठे, भोग लगा जा ।'[6]

कवि यहां फिर से राम द्वारा शबरी के जूठे बेर को खाना याद कर रहा है । अर्थात् समाज को - जनसामान्य को यह उदाहरण के तौर पर याद करा रहा है । भले ही कवि अपने हृदय रूपी जंगल में आराध्य को बुला रहा है, पर समाज उसके ध्यान से ओझल नहीं है ।

सामाजिक विषमताओं की तरफ कवि का ध्यान बार-बार जाता था । अंग्रेजों को देश से बाहर भगाना वे जितना जरूरी समझते थे, उतना ही जरूरी समाज में व्याप्त कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फेंकने में वे विश्वास करते थे । इसी प्रकार कवि ने सामाजिक विषमताओं को ध्यान में रखते हुए एक कविता लिखी है --

'महलों पर कुटियों को वारो
पकवानों पर दूध-दही ।'[7]

इतना ही नहीं,सामाजिक कुरीतियों को हटाने का तो इन्होंने व्रत ही ले रखा था । जैसे अपने एक निबन्ध 'समाज-समीक्षा - कुरीति' में ये लिखते हैं --'जब तुम किसी कुरीति को समाज से हटाना चाहते हो तब उसके द्वारा होने वाले दुदृश्यों के प्रमाण एकत्र कर लो । और फिर उसकी निरुपयोगिता की मीमांसा कर डालो । समाज में, ऐसे मिले रहो, जैसे दूध में पानी । समाज के सच्चे हृदयों पर यह बात जमा दो

---

6. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 66
7. वही, पृ० 56

कि तुम उसके अनन्य हितचिन्तक हो और उसके लिए, सब कुछ त्याग देने के लिए प्रस्तुत रहते आये हो । तुम समाज के सच्चे साथी बनो और कुरीति के गड्ढे में गिरते समय इसे चेता दो ।'[8]

समाज में व्याप्त कुरीतियों में एक कुरीति मज़हबी भेदभाव वाली भी थी । तब समाज में व्याप्त छुआछूत, धार्मिक भेद-भाव आदि से असन्तुष्ट या अन्दर से खिन्न कवि ने अपनी भावनाएं 'जब तुमने यह धर्म पठाया' नामक कविता में यों व्यक्त किया --

'सिंधु उठाया जी भर आया
थोड़ा पा दिल खाली देखा,
पलकें बोल उठीं अनजाने
कौन नेह पर मज़हब तौले
कौन तुम्हारी बातें बोले ।'[9]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे कवि माखनलाल जी का समाज के प्रति दृष्टिकोण बहुत व्यापक था । समाज पर विदेशी शासन के कुप्रभावों के साथ-साथ देश के अन्दर ही व्याप्त कुरीतियों, विषमताओं आदि ने उन्हें झकझोर कर रख दिया था । वे सच्चे अर्थों में समाज के शुभचिन्तक थे । समाज का हित, उत्थान और कल्याण चाहने वाले थे । उनके साहित्य-संसार का एक बहुत बड़ा अंश सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर लिखा गया है । भारतेन्दु के बाद सच्चे अर्थों में राष्ट्र और समाज के हितचिन्तक ये ही थे । बल्कि कुछ अर्थों में राष्ट्र के लिए बलिदानी

---

8. सं० श्रीकान्त जोशी - माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली - भाग 2, पृ० 26
9. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 26

हृदय रखने वाले और क्रान्तिकारी बन स्वतन्त्रता प्राप्ति में संघर्षरत थे ओज-शौर्य-साहस के व्यक्ति - कवि अकेले थे । इस दृष्टिकोण से इन का कोई सानी नहीं । अपने-आप में बेमिसाल व्यक्तित्व के धनी और साहित्य जगत में भी अनोखे कवि हैं ।

पूजागीत कहे जाने वाले काव्यों के संग्रह `हिमतरंगिनी` में भी राष्ट्रीयता के पुट को जोर देकर ढूंढना नहीं पड़ता । यही कवि की विशिष्टता भी है । यह पूरे काव्य-संग्रह में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरा हुआ है । सन्दर्भ चाहे कोई भी हो, राष्ट्र इनकी आंखों से एक क्षण के लिए भी ओझल नहीं होता । चाहे अपने आराध्य के लिए कोई गीत गा रहे हों या वह प्रणय-गीत हो, प्रकृतिगत काव्य हो - किन्हीं भी विषय पर हो ; राष्ट्र कहीं-कहीं ऐसे घुला-मिला आ जाता है - जैसे खीर में शक्कर । मानो सारे प्रयोजनों का केन्द्र-बिन्दु वह राष्ट्रीयता ही है ; जिसके लिए कवि का बलिदानी स्वर मुखर हो उठता है ।राष्ट्र से जुड़े शब्दों का प्रयोग उनके पूजागीत में भी धड़ल्ले से होता है, जिससे कि प्रतीकार्थ खुलने पर प्रयोजन स्पष्ट हो उठता है । जैसे, एक भक्ति गीत में देशभक्ति को किस तरह पिरोया गया है, यह देखते ही बनता है --

'मार डाला किन्तु क्षेत्र में
जरा खड़ा रह लेने दो
अपनी बीती इन चरणों में
थोड़ी-सी कह लेने दो
+ +
प्यारे इतना-सा कह दो
कुछ करने को तैयार रहूं,

जिस दिन रूठ पड़ो
सूली पर चढ़ने को तैयार रहूं ।'[10]

ऊपर की चार पंक्तियां तो आराध्य को सम्बोधित कर कही गयी हैं, किन्तु आगे लिखी नीचे की चार पंक्तियों में व्यक्त तीव्र इच्छा, कहना न होगा बलिदानी स्वर में राष्ट्र के लिए ही हैं । इन्होंने अपनी एक अन्य कविता में लिखा है --

'आ जाओ अब जी में पाहुन,
जग न जान पाये 'अजानी'
कैदी । क्या लोगे ? बोलो तो
काला गगन ? कि काला पानी ?'[11]

इनकी एक अन्य रहस्यवादी प्रणय कविता है 'कौन याद की प्याली में', उसमें इन्होंने राष्ट्रीयता का पुट किस तरह गूंथा है, देखिए --

'क्या है ? है यह पुन:
मधुर आमंत्रण जंजीरों का ?
है तू कौन ? खिलाड़ी,
प्रेरक परदानों वीरों का ?'[12]

उपरोक्त दोनों कविताओं में कवि ने व्यावहारिक व अपने प्रत्यक्ष अनुभव से अपनी लेखनी को तराशा व मजबूत किया है । तभी तो समाज हित व राष्ट्र रक्षा में स्वतंत्रता-सेनानी व क्रान्तिकारी बन जेल की सजा भुगतने वाले कवि की लेखनी के इर्द-गिर्द कारा, बंदीगृह, जंजीरें, हथ-कड़ियां, बलिदानी, भारतमाता, काला पानी आदि शब्द बार-बार आते

---

10. मालतलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 55
11. वही, पृ0 38
12. वही, पृं 43

हैं । ये शब्द भावों से परे कोरे शब्द ही हैं, ऐसा भी नहीं है । बल्कि इस तरह के शब्द भावों से भरे हैं ।

कहीं-कहीं तो प्रणय-गीत में भी राष्ट्रीयता की झलक हमें मिल जाती है । या यूं कहें तो ज्यादा उचित होगा कि इन्हीं राष्ट्रीयता की झलक को मिलाकर देखने पर उन प्रणय गीतों में मज़बूती सी आ जाती है । इस तरह के प्रयोग कवि ने कई स्थानों पर किए हैं । ऐसा लगता है मानो ये प्रेयसी या पत्नी और देश दोनों को समान महत्व दे रहे हैं । तभी तो प्रणय-गीत में भी राष्ट्र घुला-मिला हुआ है । या कहीं-कहीं ऐसा महसूस होता है कि ये अपने प्रणय-गीतों को तब-तक अधूरा मानते हैं, जब तक उसमें राष्ट्र न समा जाए । यानी कहीं-कहीं प्रणय के आगे राष्ट्र को तरज़ीह दी जाती है इनकी कविताओं में । अब इस प्रकार की कविताओं का उदाहरण देना आवश्यक जान पड़ता है --

'मुक्ति-बन्धन-मोद में सखि
विष-प्रहार-प्रमोद में सखि
बंक वाली, भौंह काली,
मौत, यह अमरत्व ढाली ।'[13]

या फिर एक अन्य कविता है --

'स्मरण की जंजीर तेरी
लटकती बन कसक मेरी
बांधने जाकर बना बंदी
कि किस विधि बंद खोलूं ।'[14]

---

13. मावलालाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 7
14. वही, पृ0 28

हालां कि उपरोक्त पंक्तियां 'बोल तो किसके लिए मैं' जैसे प्रणयगीत से ली गई हैं, इसी प्रकार की एक दो बानगियां और हैं --

'कैसे मानूं तुम्हें प्राणधन
जीवन के बन्दी खाने में,
+ +
घड़ियां तुम्हें ढूंढती आईं,
बनी कंटीली कारा-कड़ियां'[15]

यहां प्रणय-गीत में भी जैसा बलिदानी स्वर उभरा है, यह देखते ही बनता है । माखनलाल जी की एक अन्य कविता है - 'हां याद तुम्हारी आती थी' । जैसा कि शीर्षक से ही विदित होता है कि यह एक प्रेमपरक गीत है । इस तरह के प्रणय-गीत में भी बलिदानी स्वर देखते ही बनता है --

'जंजीरें हैं, हथकड़ियां हैं,
नेह सुहागिन की लड़ियां हैं,
काले जी के काले साजन
काले पानी की घड़ियां हैं ।'[16]

जिस प्रकार गृह निर्माण में नींव के लिए कुशल कारीगर खास बारीकी से एक-एक ईंट रखता है; उसी प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जनसामान्य की चेतना को उद्‌बोधन रूप में ओज भरने का काम माखनलाल जी की एक-एक कविता ने किया है । उन्होंने अपने सम्पूर्ण लगनशील जीवन को ही एक आदर्श उदाहरण के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत कर दिया

---

15. हिमतरंगिनी, पृ० 75
16. वही, पृ० 85

जब कोई कवि स्वयं क्रान्तिकारी योद्धा बन समाज व राष्ट्र के लिए मिसाल बन जाए, तो उस राष्ट्र के नागरिकों में पराक्रम का शौर्य, उत्साह, ओज, बलिदान की चाह व साहसिकता तो आएगी ही ; नई चेतना की लहर भी आएगी । आशा का संचार होगा । अगर हमारे कवि की लेखनी ने राष्ट्रहित के लिए यह महत्वपूर्ण काम किया, तो उनके व्यक्तित्व ने उपरोक्त सच्चाई को उजागर किया ।

`हिमतरंगिनी` की कुल पचपन कविताओं में लगभग सोलह जगहों पर राष्ट्रीयता के स्वर प्रत्यक्ष रूप में खुल कर सामने आए हैं और अप्रत्यक्ष रूप में तो कई स्थानों पर। कवि की किसी भी कविता की भावनाओं में निहित कारण के रूप में राष्ट्र ही सामने आने लगता है । यहां तक कि विनीत भाव में आराध्य के चरणों में जाकर साहस बटोरने के आग्रह के पीछे भी राष्ट्र ही है । वरना जिसकी पत्नी स्वर्गीया हो गई हो, वह ईश्वर के चरणों में जाकर उसी लोक की भीख मांगेगा जहां उसकी पत्नी है । बिना प्रयोजन सिर्फ जीने के लिए साहस और पराक्रम का आग्रह या प्रस्ताव नहीं रखेगा । या `सूफ का साथी मोमदीप`(आत्म चेतना) को अकारण, अनावश्यक ही जलाए रखना नहीं चाहेगा । अंग्रेजों के अन्याय-अत्याचार का खीझ या आक्रोश अपने एकमात्र सहारा आराध्य पर नहीं उतारेगा ।

एक आलोचक'डा० केदारनाथ लाभ'के अनुसार - अपने देश के आचार, धर्म और संस्कृति की महान परम्परा के परिप्रेक्ष्य में रचित चतुर्वेदी जी का राष्ट्रीय काव्य इतिहास का विस्मृत पृष्ठ न होकर देशानुराग और तथ्य बलि को सदैव समुत्सुक रहने की प्रेरणा का शाश्वत उत्स बना रहेगा ; क्योंकि भारतेन्दु के स्वरों में भारत के अधरों की तिलमिलाहट थी और मैथिलीशरण गुप्त के स्वरों में भारत के कंठ का उत्कम्प था, किन्तु चतुर्वेदीजी की वाणी में भारत के मर्म का नैसर्गिक उन्मेष हुआ है ।`[17]

---

17. चतुर्वेदीजी के काव्य में राष्ट्रीय भावना (निबन्ध से) - पृ० 91 (पुस्तक - माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - संपादक प्रेमनारायण टण्डन)

वस्तुत: `हिमतरंगिनी` में राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति लिए इन्होंने कई और कविताएं लिखी हैं --

`तू अमर धार गायन की,
श्रुति की तू मधुर कहानी,
भारत मां की वीणा की
तेजोमय करुणा-वाणी !
हीतल में पागल करने
जिस समय ज्वार आता है,
उस दिवस तरुण सेना में
बलि का उभार आता है ।
+ +
उस दिन उनके शिर, मां के
चरणों उतार आता है ।`[18]

मूलत: चतुर्वेदी जी का काव्य-संसार विविध आयाम लिए हुए है, लेकिन उन विविध स्वरूपों में राष्ट्रीय भावनाओं वाले काव्य को उनकी आत्मा मानी जा सकती है । अर्थात् इनकी काव्यगत भावनाओं का मुख्य और प्रबल पक्ष है राष्ट्रीयता । इसी राष्ट्रीयता की भावना में हमारे कवि रचे-बसे हैं । यानी इनका तन-मन-धन, आत्मा सब कुछ राष्ट्र के लिए ही है । राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक `माखनलाल जी` अपना सर्वस्व न्योछावर राष्ट्रहित में ही कर देने के पक्षधर थे । इस काम में अपने आप को ज्यादा से ज्यादा तपा कर खरा उतारना चाहता है कवि । जैसे, सोना तप कर हेम बन जाता है । कवि को स्वयं का निखरा हुआ शुद्ध रूप

---

18. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 88

पाने के लिए किस-किस ढंग से हिसाब लगाना पड़ता है --

`भावों के धन, दावों के ऋण,
बलिदानों में गुणित बना,
और विकारों से भाजित कर
शुद्ध रूप प्यारे अपना ।`[19]

कहना न होगा कि कवि अपने-आप को क्यों बलिदानों का गुणन फल निकाल कर देखना चाहता है ? इसी प्रकार इनकी एक अन्य कविता है -`यह अमर निशानी किसकी है` । इस कविता में जहां संकेत रूप में बलिदानी स्वर है, वहीं अंत में खुले व स्पष्ट रूप में भारत मां के लिए कवि ने गीत गाया है --

`जी पर, सिंहासन पर
सूली पर, जिसके संकेत चढ़ूं -
आंखों में चुभती - भाती
सूरत मस्तानी किसकी है ?`[20]

``एक भारतीय आत्मा` की वैष्णवता का जब राष्ट्रीयता में पर्यवसान होने लगा, तब जेल की सींखचों में राधा-माधव के स्थान पर उन्हें भारत-माता का ध्यान आने लगा और उन्होंने राष्ट्रीय विचारधारा को अध्यात्म से जोड़ने का नया मार्ग खोज निकाला । वैष्णवों के माधुर्य भक्ति और स्नेह-समर्पण का समवेत प्रतीति का सौन्दर्य `हिमकिरीटिनी` और `हिमतरंगिनी` की कविताओं में द्रष्टव्य है ।`[21]

---

19. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 70
20. वही, पृ० 59
21. `प्रेम, उत्सर्ग और सौन्दर्य का निर्झर एक भारतीय आत्मा का काव्य` - प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, `गगनांचल - पृ० 11 (माखनलाल चतुर्वेदी अंक) ।

एक अन्य कविता है --

"कभी भैरवी को
मस्तक कंठ पर
चढ़कर आने दे,
कैसा सधे कसाला, बलि-स्वर -
माला गुंथ जाने दे ।"[22]

भारत मां को ही अर्पित उपरोक्त पंक्तियों में बिम्ब कवि ने कितने अनूठे ढंग से खींचा है । कवि का बलिदानी स्वर अन्यत्र भी उभरा है । कहीं-कहीं तो कवि स्वयं को भी अपने ओज भरे शब्दों से जगाता है और कहीं जीवन-रूपी गान को मिट्टी में मिला देने की कामना या कल्पना से भी नहीं घबराता है । यहां हम अदम्य साहस और दृढ़ इच्छा शक्ति में अपने कवि को बेजोड़ पाते हैं । इन्हीं सन्दर्भों में प्रो० श्रीकान्त जोशी के विचारों की सच्चाई उभर कर सामने आती है --"अपने एकान्त में कोई व्यक्ति इतना पवित्र रह सकता है ? यह बात मुझे चकित करती है ।"[23] ठीक है अपने एकान्त क्षणों में, अपनी पवित्र आत्मा को लगभग उद्‌बोधन स्वर में जगाते हुए कवि का कहना है --

"शांति पहर पर,
क्रांति लहर पर,
उठ बन जागृति की अमर तान ;
उठअब ऐ मेरे महाप्राण ।"[24]

---

22. मखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 47
23. श्रीकान्त जोशी - एक पत्र में
24. मखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 52

या, फिर वे एक अन्य गीत 'सोने को पाने आये हो ' में बलिदानी पथ पर कुछ खोकर कुछ पाने की मीमांसा यों कर रहे हैं --

"क्या जीवन को ठुकरा -
मिट्टी का मूल्य बढ़ाने आये हो ?
सोने को पाने आए हो ?
+ + +
सूली के पथ, साजन के रथ-
की राह दिखाने आये हो ?
सोने को पाने आये हो ?" [25]

उनकी नज़र में सूली का पथ अपनाने वाला और जीवन को ठुकराने वाला बलिदानी, भारत की मिट्टी का मोल बढ़ाता है । धरती मातृ-भू महत्वपूर्ण हो उठती है किसी बलिदानी के जीवन-दान से ; क्योंकि ऐसे जीवन-दान अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए किए जाते हैं ।

प्रकृति-गीत को भी राष्ट्रीयता के साथ जोड़ देने की कला में हमारे कवि माहिर हैं । प्रकृति वर्णन के बहाने भारत की भूमि के लिए कुछ गाया जा सकता है । इसके लिए माखनलाल जी की कविताएं भी एक मिसाल बन जाती हैं । हालांकि प्रकृति-वर्णन के साथ-साथ राष्ट्रीयता के गीत जयशंकर प्रसाद ने भी गाए हैं । जैसे --

"अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।" [26]

---

25. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 6
26. जयशंकर प्रसाद - चन्द्रगुप्त (ऐतिहासिक नाटक से), पृ० 81

परन्तु इनकी कविताओं से माखनलाल जी की इस प्रकार की कविताएं कई अर्थों में भिन्न हो जाती हैं । प्रसाद जी की कविताओं में प्रसाद और माधुर्यगत विशेषताओं के साथ प्रकृति वर्णन में देश की बनावट, सुन्दरता या अन्य विशिष्टताओं का मेल रहता है । माखनलाल जी की प्रकृतिपरक राष्ट्रीयता भरे गीतों में भी ओजपूर्ण स्वर में - बलिदानी, कुर्बानी, विद्रोही आदि शब्द और भाव सहजता और सुन्दरता के साथ उकेर दिए जाते हैं । चतुर्वेदी जी की प्रकृतिपरक राष्ट्रीयता की भावना लिए एक-दो कविताओं के वे कुछ अंश हैं --

"अनिल चला कुरबानी गाने,
जग-दृग तारक-मरण सजाने,
+ +
बलि पर इन्द्रधनुष पहिनाने,
+ +
कोटि तरल तर तारे,
गरज, भूमि के विद्रोही
भू के जी में उकसाने ।" [27]

या, फिर एक अन्य उदाहरण है --

"ये कड़ियां हैं, ये घड़ियां हैं
पल हैं, प्रहर की लड़ियां हैं ।
नीरव निश्वासों पर लिखतीं -
अपने सिसकन, निस्पन्द चलो ।
तुम मन्द चलो ।" [28]

---

27. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 73
28. वही, पृ० 4

या, अन्यत्र भी कवि की लेखनी ने ऐसा कमाल दिखाया है --

`फूलों के रेशे की फांसी
यह किसका मन डोला ?`[29]

कहीं-कहीं तो शृंगारिकता में राष्ट्रीयता का पुट मिला हुआ है तथा ऐसे प्रयोग सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी किए हैं । सुभद्राकुमारी चौहान की एक कविता है `वीरों का कैसा हो वसंत ?` उक्त कविता में शृंगार और राष्ट्रीयता दोनों का पुट मिला हुआ है । माखनलाल जी के यहां इस तरह के प्रयोग हैं तो जरूर, पर कभी-कभी मात्र संकेत भर से काम चलाते हैं ये । जैसे --

`ये फूल, कि ये कांटे आली
आये तेरे बांटे - आली ।
आलिंगन में ये सूली हैं -
इनमें मत कर फर-फन्द चली ।
तुम मन्द चली ।`[30]

स्पष्टत: यह कहा जा सकता है कि किसी भी प्रसंग या विषय-वस्तु में राष्ट्रीय भावना को पिरो देना कवि की मौलिक विशिष्टता है ।

कवि का यही राष्ट्रप्रेम जब व्यापक रूप धारण करता है, तब इनकी कविताओं में विश्व-प्रेम की मधुर तान सुनाई देने लगती है । स्पष्टत: `हिमतरंगिनी` में विश्व-बन्धुत्व के ऐसे की आहट बहुत ज्यादा नहीं है, बल्कि आहट की तरह ही सुनाई देती है । जिस कवि के हृदय में प्रेम का सोता हमेशा भरा मिलता हो, वह कवि अपने प्रेम के सौरभ को

---

29. हिमतरंगिनी, पृ0 10
30. वही, पृ0 3

जाने-अनजाने कौने-कौने तक बिखेरेगा ही । इसी क्रम के दरम्यान हमारे कवि विश्व की चौहद्दी लांघ आते हैं, यह कहते हुए कि -

'मत उक्सा, मेरे मन मोहन कि मैं
जगत-हित कुछ लिख डालूं,
तू है मेरा जगत, कि जग में
और कौन-सा जग मैं पा लूं !'[31]

अर्थात् समाज-हित, राष्ट्र-हित के बाद अब कवि का आकुल मन विश्व-हित की बात सोचने लगता है । विश्व के कल्याण के साथ अपने राष्ट्र, समाज का कल्याण निश्चय है ; ऐसी सोच है हमारे कवि की । प्रो० श्रीकान्त जोशी जी भी इन तथ्यों को बखूबी उजागर करते हैं -- 'चतुर्वेदी जी की प्रगाढ़ स्वतन्त्रता - कामना, विश्व-भावना से रंचमात्र भी विलग नहीं हो पाती, यह देखकर और पढ़कर तनिक विस्मित रह जाना पड़ता है । वर्ष 1918 में ही वे राष्ट्र-संघर्ष के उन्मत्त क्षणों में अपने आराध्य से यह मनुहार करते हैं --

'उठ अब, ऐ मेरे महाप्राण
आत्म-कलह पर विश्व-सतह पर
कूजित हो तेरा वेद-गान ।'[32]

और यह प्रेरणा कहां से आई, इस पर डा० के बूजा प्रकाश डालते हैं -- '1891 में स्वामी विवेकानन्द के विश्व धर्म सम्मेलन का मंत्र माखनलाल जी के कानों में गूंज उठा - 'उठो, जागो, गंतव्य को प्राप्त करो, अरविंद घोष

---

31. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 27
32. श्रीकान्त जोशी - माखनलाल चतुर्वेदी (जन्मशतवार्षिकी प्रकाशन), पृ० 74

की वाणी तो जैसे किसी ने बहते हुए रक्त पर ही अंकित कर दी ।'[33] अपने को विस्थापित या यों कहें कि विश्व में राष्ट्र की अलग पहचान बनाने की प्रबल कामना है यहां ।

कवि माखनलाल चतुर्वेदी की सूझ-बूझ ही विश्व भ्रमण कर आई है। सारे जग को अपनी राष्ट्र भक्ति का पुख्ता प्रमाण देने में गर्व होता है इन्हें --

'सूझ ने ब्रह्माण्ड में फेरी लगाई,
और यादों ने सजग घेरी लगाई ।

\+ +

देख ले जग, सिसक कर
आराधना सूली चढ़ी ;
जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी ।'[34]

दुनिया वालों को अपने यहां की राष्ट्र-भक्ति का मिसाल देने को इच्छुक कवि विश्व को ही अपने में समेट लेना चाहता है । यानी स्नेह के धागे में सारे राष्ट्रों को गूंथ कर अपने आराध्य भगवान कृष्ण को अर्पित कर देना चाहता है । ऐसी स्वच्छंदता, प्रेम-सौहार्द और शान्ति चाहता है कवि, न कि परतंत्रता --

'नाचूं जरा स्नेह नदी में
मिलूं महासागर के जी में

----

33. डा0 के वनजा - माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में मानव-मूल्यों की अवधारणा, पृ0 199

34. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 दो

पागलनी के पागलपन ले -

तुझे गूंथ दूं कृष्णार्पण में
उड़ने दे घनश्याम गगन में ।'[35]

यहां पागलपन की धुन में कवि स्नेह की नदियों को आपस में मिलाकर ऐसा विदित होता है कि महासागर में मिलाना चाहता है । इतना बुलन्द हौसला, नेक-नीयत और भाई-चारा, विश्व-बन्धुत्व अन्यत्र कहां ?

कवि की प्रेमपरक भावनाएं कहीं-कहीं आंधी के तेज वेग की तरह आती हैं; जिनमें सारी विषमताएं, कुरीतियां, दमन-नीति, शोषण, परतंत्र मन की त्रासदी आदि सभी सूखे पत्तों की भांति उस झोंके में उड़ जाती हैं । तभी तो कवि कह उठता है --

'विश्व केउपहार, ये -
निर्माल्य ? मैं कैसे रिझाऊं ?
कौन-सा इनमें कहूं 'मेरा' ?
कि मैं कैसे, चढ़ाऊं ?
चढ़ विचारों में, उतर जी में,
कलंक टटोल मेरे ।
बोल राजा, बोल मेरे ।'[36]

यानी मन के सारे कलंक, सारे मैल मिटा कर निर्मल करना चाहता है कवि । कभी बिलकुल विनीत स्वर में आराध्य के चरणों में जा कर अपने को दीन और अपने अकेलेपन का दर्द बताता है --

---

35. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 23
36. वही, पृ० 29

'प्यारे विश्वाधार ! विश्व से
बाहर तुझे ढकेला,
गगन - सदृश तुझ में न
समाया, क्या मैं दीन अकेला ?'[37]

'विश्व से बाहर तुझे ढकेला' जैसे वाक्य का प्रतीकार्थ थोड़ा दुरूह है अवश्य, लेकिन इतना कठिन नहीं कि पाठक समझ न पाए । परतंत्र भारत की आत्मा अपने-आपको संसार में तुच्छ, निरीह या कटा हुआ महसूस कर रही है । अर्थात् उपरोक्त मनोविकार यहां के देशवासियों के हृदय में उथल-पुथल मचाने और आन्दोलित करनेवाले मनोभाव हैं । ये तो थे अवसाद और निराशा के पल ; लेकिन कवि कभी-कभी अपने-आप में उत्साह से भर उठता है । उसी विश्व सतह पर उत्साहित हो उठता है --

'किस परम आनन्द -
निधि के चरण पर,
विश्व-सारे गीत,
गाने - सी लगीं ।
जग उठा तरु-वृन्द जग, सुन घोषणा,
पंक्षियों में चहचहाहट मच गई ;
वायु का झोंका जहां आया वहां -
विश्व में क्यों सनसनाहट मच गई ?'[38]

यानी उसे (कवि को) लगता है कि हमारे शौर्य और बलिदान से, उत्साह

---

37. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 67
38. वही, पृ0 40

के गान से विश्व में भी सनसनाहट सी हो उठी है । पंछी चहचहा कर गीत गाने लगे हैं और यह वायु का झोंका साधारण झोंका नहीं है, बल्कि चेतना की लहर है । जिसकी प्रशंसा, जिसका गुणगान पूरा विश्व करने लगा है मानो । यानी विश्व ने हमारे उत्साह से कुछ सीखा और हम ने विश्व में खलबली मचा दी । और तो और, उत्साह के इस नए सूर्योदय में प्रेम का जन्म हमारे यहां हुआ है --

"प्रेम की जन्म-गांठों जगी मंगला-
राग वीणा प्रवीणा सखी भारती,
आज ब्रह्माण्ड की गोपिका गा उठी
सूर्य की रश्मियों श्याम की आरती !"[39]

मंगला राग (मंगला चरण) सखी भारती (भारत) ने गाया और ब्रह्माण्ड गोपियां बन इन्हीं जागरूक चेतना ने अर्थात् सूर्य की रश्मियों से प्रेम के साक्षात् प्रतिरूप श्याम (कृष्ण) की आरती उतारी है । यानी कवि की आस्था (कृष्ण) के आगे सारा ब्रह्माण्ड नतमस्तक है । कहना न होगा इतना व्यापक बिम्ब विश्व-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व की भावना के बिना संभव न था । इससे हमारे कवि के विविध भावोद्गारों का पता चलता है । सम्पूर्ण कवित्व उसे ही हासिल होती है, जिसके दृष्टिकोण (विषय-वस्तु के चयन के) में लेखनी की विविध शैलियों को जनसामान्य से लिए गए बिम्ब और प्रतीकों के साथ ढालने की कला हो । सहज भाषा का उचित बोध व प्रयोग हो, आदि । इन सारी कसौटियों पर हमारे कवि खरे उतरते हैं । भावों

---

39. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 41

के आवेग को समेट कर या काबू पा कर तारतम्यता न दे पाने से कहीं-कहीं दुरूहता अवश्य है परन्तु वह बाधक नहीं है । जो कवि कविता को हृदय की लाचारी माने, उसके काव्यों में भावों के मे आवेग थोड़ी बाधा तो पहुंचाएंगे ही ।

कुल मिलाकर 'हिमतरंगिनी' में सामाजिकता, राष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व अपनी-अपनी पृष्ठभूमि में उकेरी गई है । और, कवि यहां एक चित्रकार की भांति अपनी लेखनी रूपी तूलिका को भावनाओं की तरंगों, अनुभव के रंगों से रंग कर पूर्णतः वास्तविकता के फ्रेम में कस कर सजाने की कोशिश की है ।

अध्याय - 4

काव्य-कला की विशिष्टताएं

(भाषा-शैली, गीतितत्व एवं अन्य)

कला कालजयी तभी होती है जब वह कालजीवी होती है। यानि जो कला अपने युग को जीती है, वह कालजीवी कहलाती है तथा वही कालजीवी कला विशिष्ट कहलाती है जब आनेवाले युगों को अपना अस्तित्व न्योछावर कर देती है । तब वह कालजयी कहलाती है । अर्थात् वह अपने काल को तो जीती ही है, साथ ही भविष्य को अपने में संजोये भविष्य की गाथा भी गाती है । ऐसा ही कुछ कहा जा सकता है माखनलाल चतुर्वेदी कृत `हिमतरंगिनी` काव्य-संग्रह की कविताओं और उसकी काव्य-कला के बारे में । वस्तुत: काव्य-कला की विशिष्टताओं को मात्र लेखन-शैली की कलात्मकता में नहीं आंका जाना चाहिए । काव्य के सन्देश को कलात्मकता की रीढ़ और भाषा, उसमें निहित सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक परिस्थितियों के प्रस्तुतीकरण के सलीके को मैं काव्य-कला की नींव कहना चाहूंगी । बेशक, कल्पना उनमें सौन्दर्य के रंग भर कर, उन्हें निखार देती है । इन सबों का सुनियोजित संयोजन ही काव्य-कला की विशिष्टता कही जानी चाहिए। युगीन सन्दर्भों में लिपटी कविता में जब आने वाले युगों के भी दर्शन-साक्षात्कार या आभास ही मिलते हों और उसकी प्रासंगिकता युगों-युगों तक बनी रहे, तब वे कवितायें विशिष्ट कलात्मकता के साथ साहित्य-जगत् में अंकित हो जाती हैं । ऐसी कविताओं को कहने-लिखने वाले कवि भी अपनी अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रहते ।

माखनलाल जी ने साहित्य के सैद्धान्तिक स्तर पर काव्य-कला की सानापूर्ति के लिए कवितायें नहीं लिखीं ; ना ही कविताओं को बाहरी चमक-दमक से सजाने के लिए या कलात्मकता का निर्वाह भर करने के लिए कवितायें लिखीं, बल्कि हम यों कह सकते हैं कि हमारे `भारतीय आत्मा` के लिए मूल भावों के मर्म ही कविता की आत्मा हैं और वही, इनके यहां काव्य-कला की विशिष्टता भी बन पड़ी है । इस बात की पुष्टि

सुरेन्द्र यादव व डा० सुमन के विचारों से भी की जा सकती है - 'माखनलाल चतुर्वेदी ने काव्य का सृजन कला के लिए न कर मानव-मात्र की पीड़ा का वरण करने के लिए किया था । चतुर्वेदी जी ने कभी भी शास्त्र-सम्मत नियमों में बंध कर, काव्य का सृजन नहीं किया । डा० सुमन के शब्दों में 'दादा का काव्य-शिल्प अलग है । उनका काव्य-मार्ग है - वह किसी का अनुगन्ता नहीं है ।'[1]

वस्तुत: अपने काव्य में अलंकार, छंद आदि शिल्पगत तत्वों के प्रति माखनलालजी सतर्क नहीं दिखाई देते हैं । कोशिश करके अपनाए गए शिल्पगत तत्वों के समावेश से वे हमेशा दूर ही रहे । कारण शायद यही रहा होगा कि सचेष्ट शिल्पगत तत्वों को भरने से भावनात्मक काव्य की आत्मा मर जाती ; ऐसी विचारधारा के पोषक होंगे वे । यानि उनकी कविता की मूल आत्मा - भावना या संवेदना, स्वच्छंद विचरण करना चाहती थी साहित्य-संसार में । अगर वे सचेष्ट होकर सभी शिल्पगत तत्वों को साथ मिलाने की कोशिश करते तो उनकी कविता इतनी सहज नहीं, बल्कि पैबन्द लगे कपड़े में लिपटी निरीह, दीन-हीन, असहाय सी कविता बन जाती । ना वो स्वतंत्र पहचान होती, ना ही उसमें इतना ओज व साहस होता और ना ही समाज - राष्ट्र - विश्व के लिए जूझ कर गुजरने का सामर्थ्य ही होता, उनकी कविताओं में । सम्भवत: कलात्मक सौन्दर्य स्वाभाविकता को खत्म कर उसकी पहचान खो देता ।

फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि उनके यहां काव्यात्मक-सौन्दर्य या कलात्मकता का नितान्त अभाव है । यह कलात्मकता सायास नहीं , बल्कि

---

1. सुरेन्द्र यादव - माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता, पृ० 92

अनायास ही समायी है उनकी कविताओं में । उनके यहां भी छंदों, अलंकारों आदि का समावेश स्वाभाविकता के साथ हुआ है । इसी अनायास और स्वाभाविक कलात्मक सौन्दर्य ने उनकी कविताओं को वह निखरा रूप दिया, जो अन्यत्र दुर्लभ है । इसी विशिष्टता को प्रो० केदारनाथ सिंह ने अपने शब्दों में यों व्यक्त किया है --`सबसे बड़ी बात जो सर्जक तथा चिन्तक माखनलाल चतुर्वेदी को अन्य समकालीनों से अलग करती है, वह है एक ठेठ हिन्दुस्तानी की सहज प्रज्ञामूलक सोच, जो लिखित शब्द की अपेक्षा ठोस अनुभव पर ज्यादा भरोसा करती है । इसी अर्थ में वे `एक भारतीय आत्मा` थे और ऐसा होने का नैतिक अधिकार उन्होंने श्रमपूर्वक अर्जित किया था ।`[2]

इनके काव्य के शिल्पगत स्वरूप पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि काव्यगुण के माधुर्य, ओज, प्रसाद - तीनों गुणों का पर्याप्त समावेश हुआ है `हिमतरंगिनी` के काव्य में । माधुर्य जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें मिठास,रोचकता और माधुर्य तीनों समाया होता है तथा श्रृंगार की प्रधानता भी मानी जाती है । इस माधुर्य गुण से ओत-प्रोत `हिमतरंगिनी` में कई पंक्तियां हैं जिनमें से कुछ हैं --

`चाहों सी, आहों सी, मनु-
हारों सी, मैं हूं श्यामल श्यामल
बिना हाथ आये छुप जाते
हो, क्यों ? प्रिय किसके मंदिर में
चलो क्रिया-सी हो अन्तर में ।`[3]

---

2. प्रो० केदारनाथ सिंह - मेरे समय के शब्द, पृ० 1
3. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० 11-12

या एक अन्य उदाहरण यों है --

`चमक रही कलियां चुन लूंगी
कलानाथ अपना कर लूंगी
एक बार `पी कहां `कहूंगी
देखूंगी अपने नैनन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में ।`[4]

इसी प्रकार `मैंने देखा था कलिका के ` जैसी कुछ कविताएं भी उपरोक्त उदाहरणों की पुष्टि करती हैं । अब ओजगुण से भरपूर इनकी `हिम-तरंगिनी` में निहित कविताओं पर दृष्टिपात करना भी आवश्यक है--

`सरदारों पर ग्वाल, और
नागरिकों पर बृज बालायें
हीर-हार पर वार लाड़ले
वनमाली - वन - मालायें ।`[5]

या फिर देखें तो, `जागना अपराध`, `उठ अब ऐ मेरे महाप्राण` आदि कविताएं भी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । वस्तुत: ओज में उत्साह, प्रताप, वीरता, दीप्ति, तेजस्विता, आवेश आदि भावों का समावेश रहता है । प्रसादगुण भी भरपूर है मालवलाल जी की कविताओं में । इसमें सरलता और सहजता की ही प्रमुखता रहती है। जैसे --

`अपनी जबान खोलो तो
हो कौन जरा बोलो तो ।`[6]

---

4. मालवलाल चतुर्वेदी, पृ0 23
5. वही, पृ0 56
6. वही, पृ0 87

या फिर `गो-गण संभाले नहीं जाते म्हवाले नाथ` आदि कविताएं भी इसी प्रसाद गुण के अन्तर्गत आएंगी ।

अब अगर हम `हिमतरंगिनी` में बिम्ब पर एक नजर डालेंगे तो पाएंगे कि कविकी कल्पना एक शब्द-चित्र की भांति बिम्ब को उकेरती चली है । इसका सबसे अच्छा उदाहरण - नाद की प्यालियाँ मोद की ले सुरा, आज नयन के बंगले में, वह टूटा जी, जैसा तारा, उड़ने दे घनश्याम गगन में आदि अनेक कविताएं हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है --

नाद की प्यालियां मोद की ले सुरा
गीत के तार-तारों उठी छा गई
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी
बोल बोली सलोने कि मैं आ गई ।[7]

प्रतीक - माखनलाल जी ने `हिमतरंगिनी` के गीतों में प्रतीक के प्रकृति अनुसार ही उसका संयोजन किया है । वस्तुत: विचार भावना, कल्पना की सांकेतिक अभिव्यक्ति होती है - प्रतीक के जरिए । ये प्रतीक ऐतिहासिक, पौराणिक आध्यात्मिक व प्रकृतिपरक हो सकते हैं । `हिम-तरंगिनी` में कुछ प्रतीकात्मक शब्द इस प्रकार आए हैं - साजन - ईश्वर का प्रतीक, तारा - आत्मा या हृदय का प्रतीक, रात सुहागन - प्रेयसी या पत्नी का प्रतीक, साजन के स्थ - आराध्य मंदिर या अपने ध्येय - उद्देश्य या मंजिल के लिए प्रयोग किया जाने वाला प्रतीक, श्याम - गौर - कृष्ण राधा या शंकर-पार्वती का प्रतीक, मोम-दीप-आत्मचेतना का प्रतीक, पिंजड़े का पंछी - आत्मा का प्रतीक तो है ही, साथ ही माखनलाल जी

---

7. हिमतरंगिनी, पृ0 41

के यहां `परतंत्र भारत का नागरिक` का भी अर्थ देता है । इसी तरह `साक्ष की फर` - आंसू का प्रतीक और आंसू के लिए ही एक और प्रतीक रूप में हमारे कवि ने `तरल कहानी` जैसे शब्द को भी चुना है या गढ़ा है । `हिमतरंगिनी` के और भी कई प्रतीकार्थ हमारे सामने खुलकर आते हैं --`आंखों की पुतली, जी की धड़कन आदि शब्दों के पीछे इनके आराध्य ही छिपे हैं । माखनलाल जी की कविता में बिम्ब-प्रतीक आदि से काव्य सौन्दर्य किस ढंग से निखर उठा है, इस तथ्य पर प्रो० विजयेन्द्र स्नातक ने प्रकाश डाला है -`रहस्य, आध्यात्म, राजनीति, राष्ट्रीयता, वैष्णवता, भक्ति आदि के बिम्ब-प्रतीकों से आप्लावित उनकी कविता भावों के इन्द्र-धनुष की सृष्टि कर पाठक को उस चेतना स्तर पर लेजाती है जहां जातीय अस्मिता के साथ स्मृति का - वर्तमान युग बोध का - साम्राज्यवाद का, विदेशी शासन की पराधीनता का संसार उभर कर सामने आ जाता है । इतनी व्यापक परिधि का काव्य-संसार उस समय किसी अन्य हिन्दी कवि के पास नहीं था । एक भारतीय आत्मा को इसलिए मैंने काव्य-पुरुष की संज्ञा दी है ।`[8]

अलंकार

अब `हिमतरंगिनी` के काव्य के शिल्पगत स्वरूप में अलंकार की छान-बीन की आवश्यकता जान पड़ती है । `हिमतरंगिनी` में माखनलाल जी ने अनुप्रास, उपमा, विरोधाभास व पुनरुक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । यथा --

उपमा अलंकार - `यह धीरज, सतपुड़ा शिखर
सा स्थिर, हो गया हिंडोला` ।

---

8. गगनांचल पत्रिका - पृ0 15, वर्ष 14, अंक 1, 1991
माखनलाल चतुर्वेदी अंक, संपादक - गिरिजाकुमार माथुर

उपमा अलंकार का एक और उदाहरण प्रस्तुत है --

`किस परम आनन्द-
निधि के चरण पर,
विश्व-सारें गीत,
गाने-सी लगीं ।`

अनुप्रास अलंकार

`तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है ?`

विरोधाभास अलंकार

`खोने को पाने आये हो ।`

पुनरुक्ति अलंकार

मन धक-धक की माला गूथे ।

रस

कलात्मक दृष्टिकोण से एक विशिष्टता काव्य में रस की उपस्थिति भी है । `हिमतरंगिनी` में शृंगार रस (दोनों रूपों में), वीर, करुण रस, शांत रस, भक्ति रस आदि का सुन्दर समायोजन हुआ है । प्राय: शृंगार रस के दोनों भेदों का उदाहरण `हिमतरंगिनी` में देखने को मिलता है । यथा --

`तुम चन्दा
मैं रात सुहागन
चमक - चमक उट्ठें आगन में ।`[१]

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ० ११

या, एक अन्य कविता है --

'वे तुम्हारे बोल ।

वह तुम्हारा प्यार, चुम्बन

वह तुम्हारा स्नेह-सिहरन ।'[10]

इसके अतिरिक्त श्रृंगार-रस में लिपटी कुछ अन्य कविताएं हैं - बोलराजा, स्वर अटूटे / उस प्रभात, तू बात न माने / नाद की प्यालियों, मोद की ले सुरा / कौन ? याद की प्याली में । मैंने देखा था, कलिका के / मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये... आदि ।

इसी प्रकार उनकी कुछ कविताओं में हम वीर-रस के दर्शन पाते हैं -

'बीन लिये, उठ सुजान,

गोद लिये खींच कान,

परम शक्ति तू महान ।

कांप उठे तार-तार,

तार-तार उठें ज्वार,

खुले मंजु मुक्ति द्वार ।'[11]

उपरोक्त पंक्तियों में हमें वीर रस की झांकी मिलती है । इसी प्रकार शांत रस का एक उदाहरण द्रष्टव्य है --

'मुझ, का साथी -

मोम-दीप मेरा ।

कितना बेबस है यह

जीवन का रस है यह

---

10. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 17

11. वही, पृ0 52

झलझल, पलपल, कलकल
छू रहा सवेरा ।'[12]

अब अगर हम इस पूरे काव्य संग्रह में करुणा रस प्रधान कविताओं की छानबीन करते हैं, तो पाते हैं कि पत्नी की याद में इन्होंने जितने भी गीत लिखे, उन सब में करुणा रस विद्यमान है । जैसे --

'आज मैंने
बीन खोई
बीन - वादक का
अमर स्वर - भार
आज मैं तो
खो चुका
सासें - उसासें
और अपना लाड़ला
उर - ज्वार ।'[13]

इसी प्रकार इनकी करुणा रस की प्रधानता लिए अन्य कविताएं हैं - 'कैसे मानूं तुम्हें प्राणधन, हां याद तुम्हारी आती थी, भाई छेड़ो नहीं मुझे' आदि । इनमें से 'भाई छेड़ो नहीं मुझे, खुलकर रोने दो' ज्यादा मार्मिक बन पड़ी है --

'भाई, छेड़ो नहीं, मुझे
खुलकर रोने दो
यह पत्थर का हृदय
आंसुओं से धोने दो ।'[14]

----

12. हिमतरंगिनी, पृ0 14

13. वही, पृ0 18

14. वही, पृ0 21

पत्नी की मृत्यु-दिवस पर लिखी गई उपरोक्त पंक्तियां करुण रस की अद्वितीय उदाहरण बन गई हैं । अब `हिमतरंगिनी` में भक्ति रस की प्रधानता लिए इनकी कुछ कविताएं हैं -- जो न बन पाएं तुम्हारे । गो-गण संभाले नहीं जाते मतवाले नाथ । सुनकर तुम्हारी चीज हूं । बोल तो किसके लिए मैं । दूर न रह, धुन बंधने दे । माधव दिवाले हाव-भाव पै बिकाने । आते-आते रह जाते हो । दुर्गम हृदयारण्य, दण्डकारण्य । हे प्रशान्त । तूफान हिये में । आ मेरी आंखों की पुतली । तुही है बहकते हुओं का इशारा । पत्थर के फर्श, कगारों में आदि । उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं --

`तुही है बहकते हुओं का इशारा
तुही है सिसकते हुओं का सहारा ।`[15]

या,

`हे घनश्याम । धधकते हीतल-
को शीतल कर दानी ।`[16]

या फिर एक अन्य उदाहरण है --

`माधव दिवाने हाव-भाव
पै बिकाने
अब कोई चहे बन्दै
चहे निन्दै, काह परवाह ।`[17]

यूं तो `हिमतरंगिनी` में वात्सल्य रस न के बराबर है, परन्तु `तु ही क्या समदर्शी भगवान ? ` शीर्षक गीत में कवि अपने आराध्य से सवाल

---

15. हिमतरंगिनी, पृ0 79
16. वही, पृ0 67
17. वही, पृ0 49

करता है और ईश्वर के बाल रूप का ही बार-बार स्मरण करता है । अर्थात् स्वयं को बड़ा मानकर और आराध्य के बाल रूप को सामने रख वात्सल्य भरे शब्दों में डांट भी लगाता है । वहीं कुछ अंशों में वात्सल्य रस की झलक हमें मिलती है -

`गो-गण में जो खेले,
ग्वालों की झिड़की जो झेले
जिसके खेल-कूद से टूटे,
जीवन शाप झमेले ।

\+ + +

व्याकुल ही जिसका घर है
आकुलातों का गिरिधर है,
मेरा वह नटवर है, जो
राधा का मुरलीधर है ।`[18]

भाषा-सौन्दर्य

`हिमतरंगिनी` में भाषा-सौन्दर्य पर विचार करते समय हम पातेहैं कि इस काव्य संग्रह की भाषा के माध्यम से कवि अपनी गहन अनुभूतियों को सहज-सरल शब्दों द्वारा पाठक तक पहुंचाने में सक्षम है । भावनाओं को व्यक्त करने में भाषा सशक्त माध्यम के रूप में उभर कर आती है । वस्तुत: काव्य की भाषा कुछ विशिष्ट सजी-संवरी कलात्मकता लिए होती है, परन्तु उन सब के बीच सहज और सटीक शब्दों का चयन भी मायने रखता है ।

---

18. माखनलाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी, पृ0 51

निश्चय ही माखनलाल जी ने सटीक शब्द-चयन द्वारा अपने काव्य में गेयता व सहजता ला दी है, लेकिन कहीं-कहीं अपवाद भी मिलते हैं । भाषा के नये-नये प्रयोगों पर इनकी लेखनी ने बल दिया । इन्हीं सन्दर्भों में प्रो० केदारनाथ सिंह की उक्ति बहुत ही सटीक लगती है --"उनके पद्य और गद्य, दोनों की भाषा की पड़ताल की जाय तो पता चलेगा कि वह हिन्दी के परम्परागत केन्द्रों में लिखी जाने वाली भाषा से काफी हद तक भिन्न है, जिसमें एक खास तरह का देशज खुरदुरापन भी है और मिली-जुली मिट्टी का अपना एक अलग रंग भी । गद्य में जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा अपने स्वाद में महाराष्ट्र की छौंक लिये थी, कविता में माखनलाल चतुर्वेदी की भाषा अलग ढंग से उस सीमावर्ती प्रभाव को आत्मसात् करने की कोशिश करती है । यह हिन्दी की जातीय चेतना का विस्तार है और बृहत्तर राष्ट्रीय चेतना के सांस्कृतिक रंग-बिरंगेपन का सूचक भी ।"[19]

इनके काव्यों कीवास्तविक पृष्ठभूमि में कल्पना की भी भरपूर भागीदारी है और यहकल्पना जहां कहीं भी बढ़-चढ़ कर आई है, वहां भाषा के नये प्रयोग हुए हैं । जैसे माखनलाल जी की भाषा-शैली में एक बात यह भी शामिल है कि - विशेषण युक्त शब्दों के आगे उसी विशेषता को पुन: जोड़ कर दिखाना । यथा - प्यारा-सा - प्यारा मंजु महल, मधुर मधुमास, महान् कठोर, प्रलयंकर शंकर, कुटिल कटाक्ष आदि ।

इसी प्रकार 'हिमतरंगिनी' में विशेषणयुक्त कवितद्वारा भाषा के नए प्रयोग यों हैं - ओसों के आंसू, तारों की समाधि, आंख में साकन क्षाया, नयन केसाजन, नयन के प्राण, सपने मधुरतर, वियोगिन सांझ,

---

19. प्रो० केदारनाथ सिंह - 'मेरे समय के शब्द', पृ० 42-43

काढ़ जी पर बेल-बूटे, भैरव ध्वनि, नाद की प्यालियों, मोद की ले सुरा, मंगलाराग वीणा प्रवीणा, प्रीति की पंखिनी, लुभान, आकुलातों, विश्व-सांसें, प्राण-प्रतिष्ठा, प्रणय-मंदिर, अमर निराशा, अमर-निशानी, अमर बलिदानी, अमर अस्तित्व, अमर रस, प्यार के देश, प्राण केवाग आदि । उनके प्रिय विशेषण युक्त उपरोक्त शब्दों से काव्य भाषा में कसाव व आकर्षण से पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उपरोक्त शब्द प्राय: चित्र उकेरते से लगते हैं ।

काव्य-भाषा में वक्रोक्ति की महत्ता लगभग सभी विद्वान् मानते हैं । मालवलाल जी इस कला में भी निपुण हैं । काव्य में वक्रोक्ति हो, वो भी सीधे-सरल शब्दों में, तो यह कवि की कलात्मक निपुणता को दोगुनी कर देने वाली बात है --

`दिलसे, आखों से, गालों तक -
यह तरल कहानी किसकी है.?`

\+ + +

सूखी अस्थि, रक्त भी सूखा
सूखे दृग के झरने -
तो भी जीवन हरा । कहो,
मधु भरी जवानी किसकी है ?`[20]

जैसे अनेक उदाहरण इस काव्य संग्रह में मिल जाएंगे । यह कलात्मक निपुणता वक्रोक्ति में हो या विडम्बना के साथ, सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कवि की ज्यादातर गूढ़ भावनाएं सरल भाषा-शैली में ही लिपटी हैं । और -

---

20. हिमतरंगिनी, पृ0 58

इन्हें समझने के लिए पाठक का काव्य-मर्मज्ञ या विद्वान होना आवश्यक भी नहीं है । तब विद्वानों द्वारा आरोपित सम्प्रेषण में बाधा इनकी भाषा में नहीं, बल्कि तीव्र भावावेग की लड़ियां जब जल्दी-जल्दी एक-दो अन्तरे में ही पिरोयी जाती हैं, वे हैं, वहां पाठक-आलोचक को मुश्किलों का सामना करना पड़ता है । फिर इनकी कविताओं को समझने के लिए स्थिर मन और पर्याप्त धैर्य की आवश्यकता पहली शर्त बन जाती है । ऐसा करते ही हर गुत्थी सुलझ जाती है । हां, यह अवश्य है कि इनकी काव्य-भाषा में व्याकरणिक दोष पाए जाते हैं, पर हमेशा नहीं । अपनी कविताओं को सुन्दर बनाने के लिए, इस तरह की भूलों को आत्मसात् करने की कोशिश अन्य छायावादी कवियों ने भी की है। ऐसा करने के पीछे कारण यह नहीं है कि वे व्याकरण नहीं जानते थे । शायद कारण सिर्फ यही रहा हो कि - कविता की बाहरी बुनावट में कहीं कोई खुरदुरापन न रह जाए । हालांकि काव्य-कला के शास्त्रीय अन्दाज में यही दोष खुरदुरापन कहलाएगा, लेकिन शास्त्रीय पद्धति कविता की भीतरी बुनावट के अन्तर्गत मानी जाएगी । जबकि चतुर्वेदी जी ने कविता की बाहरी बनावट की खातिर या ज्यादा से ज्यादा पाठक की समझ की खातिर ऐसी छूट ली होगी । इतना कहने का आशय यह कतई नहीं होना चाहिए कि वे सिर्फ कविता की बाहरी बनावट पर ही ध्यान देते थे । हमें उनके काव्य के आन्तरिक बुनावट को शास्त्रीय पद्धति में तौल कर नहीं, बल्कि भावों की गहन अनुभूतियों और सामूहिक वेदना के मर्म के साथ तौल कर देखने की पद्धति अपनानी चाहिए । यही उनके कलात्मक पक्ष की महत्ता होगी । कवि त्रिकर ने भी उनकी कविताओं के लिए यह महसूस किया था कि -"माखनलाल जी की कितनी ही कविताओं में वक्रोक्ति अपने चरम विकास पर पहुंची हुई मिलती है, जहां अप्रतिम सौन्दर्य पर रीझा हुआ रसग्राही हृदय तप करते-करते हार जाता है, किन्तु सौन्दर्य का रहस्य-द्वार नहीं खोल पाता । उनकी कितनी ही रचनाएं आलोचना को विकल और परास्त कर देती हैं । सामने जगमगाते हुए तारों को तो हम देखते हैं, किन्तु उन के पीछे की कुहेलिका भेद नहीं पाते । भाषा सरल, कहने का ढंग अत्यन्त

आकर्षक और चित्रों में तेज का पूरा निखार, सभी गुण एक से एक बढ़ कर हैं, किन्तु अक्सर ही पंक्तियां अपनी मस्ती में लहराती हुई हमारी ओर मुखातिब हुए बिना आगे बढ़ जाती हैं । कवि हमारे हाथों में भाव का छोर थमाकर स्वयं न जाने किस कुंज में अन्तर्धान हो जाता है ।`[21]

अब आवश्यकता है - कवि द्वारा थमाये गए भाव के इसी एक छोर से उनके काव्य-जगत् के दूसरे छोर तक पहुंचने की ।यानि भावों के इसी छोर में उनके काव्य के कलात्मक पहलुओं को ढूंढ निकालने की । `हिमतरंगिनी` में शब्द-योजना अत्यन्त प्रभावशाली है । माखनलाल जी के शब्द-चयन में कहीं पर्याप्त प्रौढ़ता है और कहीं देशज शब्दावली की भरमार है। कहीं-कहीं खड़ी बोली के साथ उर्दू-फारसी के शब्द भी संजीदगी से समाये हुए हैं । इन्होंने भावों के अनुकूल चित्रमय शब्दों का प्रयोग किया है । कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम-प्रधान शब्दों को भी अपनाया गया है ।`हिमतरंगिनी` की कुछ कविताएं उर्दू शैली से प्रभावित हैं तो कुछ ठेठ ब्रज बोली में होने का आभास कराती हैं । जैसे - `जहां से जो खुद को जुदा देखते हैं` कविता उर्दू शैली से प्रभावित है तथा `माधव दिवाने, हाव-भाव पै बिकाने` कविता ब्रजभाषा की देशज शैली में लिखी गई है ।

इसके अतिरिक्त `हिमतरंगिनी` की कविताओं में शब्द-चयन की बारीकियों को समझना उचित जान पड़ता है । इस काव्य-संग्रह में चयनित उर्दू-फारसी से आए कुछ शब्द हैं -- फक्त, फ़रियाद, टफनाती, मिजराब, बेताब, लैसा, फांसी, मरघट, बेबस, मस्त, दिलदार, मनहर, मज़हब, दिल, दीवानी, कैदी, बंदी, कुसूर, होश, बावली, नजर बन्द, बेकाबू, ज़रा, कसकों, फौलादी, जालिम जहां, खुद, जुदा, खुदी, रिश्वत मस्तानी, कुरबानी, नादानी, तसवीर, अरमानों , मनसूबे फीके, ज़बान, दिलजलों, समा, बाजुओं आदि ।

---

21. दिनकर - मिट्टी की ओर, पृ० 120-21

वास्तव में इन शब्दों ने इन गीतों की सुन्दरता में एक सहजता सी ला दी है। इन सभी शब्दों के मेल से कविता की आवाज आम जनता में आ मिली है, ऐसा महसूस होता है। इन शब्दों की जो अहमियत उक्त कविताओं में है, वो अहमियत शायद वहां किन्हीं और शब्दों को देना काव्य की सहजता को कम कर देना होता। `हिमतरंगिनी` में संस्कृत के तत्सम प्रधान शब्दों में से कुछ शब्द हैं -- `प्रणयिनी, दण्ड-दान, हे प्रशान्त तूफान हिए, मधुरिमा, हृदयारण्य,सुवर्ण, मुदित गुर्धन, कृष्णार्पण, प्रलयंकर शंकर, अरुणिमा, आत्मार्पण, दण्डकारण्य, नभ-विदलिनी पुकार, पुण्य-प्रमोदा, शुभांग, जगज्जननी, लक्ष्मीकांत, विश्वाधार, शस्य श्यामला, विन्ध्य-शिखरों, मुक्ताहार, तेजोमय आदि। उपरोक्त शब्दों की मदद से कवि ने काव्य में कल्पना-सौन्दर्य को निखारा है। इसके अतिरिक्त `हिमतरंगिनी` में प्रयुक्त कुछ देशज शब्दावलियां हैं जो गीतों की मधुरता या मिठास को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई हैं। वे शब्द हैं - साधें, जंजाल, कलेजा, चाव, बिरिया, बोल, जी से काढ़, बखेड़ा, ढेले, कसाला, छुटने-बिछुड़ने, इहां, वहं बन्दे (ब्रज) वहे निन्दे, काह-परवाह, काहु भोगन, टूटे कोऊ, लूटे, छूटे आदि ब्रज भाषा की शब्दावलियां हैं। अन्य देशज शब्दावलियां हैं - जोह-जोह, सिंगार, चिक्कण, कांख, झांक, निगोड़ा, उकसाने, जोहा, बिकानी, ढोता, इकली, खेलाख, कलूटी, लहलह करते, पाहुने, लखूं आदि। कवि द्वारा प्रयुक्त इन देशज शब्दों को ध्यान में रखते हुए डा० सुभाषमहाले का कहना है -`कवि माखनलाल जी की भाषा में लचीलापन है, सर्वसमावेशकता है। इसका कारण यह है कि भाषा के ग्राम्य स्वरूप की ओर कवि का अधिक रुझान है।... भाषा के मामले में माखनलाल जी भाषा-विज्ञान के अनुगामी लगते हैं, व्याकरण के नहीं। परिणामत: उनकी काव्य भाषा श्रम साध्य और शास्त्रीय न होकर ग्राम्य और ग्रामीण बोलियों के शब्दों से भरी पड़ी है।`[22]

---

22. डा० सुभाष महाले -`माखनलाल चतुर्वेदी और वि० दा० सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना`, पृ० 297

इसी सन्दर्भ में इस काव्य संग्रह में अनेक उदाहरण मिलेंगे । यथा --

'बोल पर जी दुखता है ।
+ +
एक बिरिया
एक बिरिया
फिर कहो वे बोल ।'[23]

या एक अन्य उदाहरण --

'सिसकियों के सघन बन सी,
श्याम-सी
ताजे, कटे से,
खेत सी असहाय,
कौन पूछे ?'[24]

यह माटी से जुड़े और वहीं से उठाए गए बिम्बों का सहज और बहुत ही मार्मिक उदाहरण है । यहां समाज का बिम्ब युगीन सन्दर्भों में रखकर देखा है कवि ने, क्योंकि जन-जीवन का हृदय परतन्त्र भारत में कौड़े गए - काटे गए ताजे खेत की भांति असहाय था । यहां हमें डा० सुभाष महाले की उपरोक्त उक्ति बड़ी ही सटीक लगती है । उपरोक्त सन्दर्भ में ही कवि की कुछ अन्य पंक्तियां हैं --

'दोनों कारागृह पुतली के
सावन की झर लाये री सखि ।

---

23. हिमतरंगिनी, पृ० 19
24. वही, पृ० 7

आज नयन के बंगले में
संकेत पाहुने आये री सखि ।'[25]

उपरोक्त पंक्तियां एक प्रणयगीत या भक्ति गीत से ली गई हैं तथा देशज शब्दावलियों का पुट भी भरपूर मिलता है इसमें - री, सखि, बंगले, पाहुने आदि शब्दों द्वारा । यहां कवि की भाषा की विशिष्टता इन अर्थों में बढ़ गई है कि इन्होंने अपने युग के मुताबिक उक्त चार पंक्तियों में एक शब्द `कारागृह` को डाल दिया है । जहां `जायसी` ने नख-शिख वर्णन में पद्मावती के पुतली की बरौनियों को राम-रावण युद्ध में तैनात, पंक्तिबद्ध सैनिकों की संज्ञा दी है, वहीं मालनलाल जी ने अपने युगीन परिस्थितियों के अनुरूप पुतली के बरौनियों को कारागृह की संज्ञा दी है । वस्तुत: हमारे कवि में भाषा की शब्दावलियों से ही अपने युग की समस्त परिस्थितियों को समेट लेने की इच्छा, साहस व अदम्य क्षमता भी थी । कुछेक शब्दों के संकेत से ही इनकी लेखनी अपने युग की दशा को दिखा जाती थी । कवि की इसी अद्भुत कला के आगे काव्य की शास्त्रीय कलात्मकता को घुटने टेक देने पड़ते हैं । भाषा की इसी सशक्त व मजबूत पकड़ ने कवि को महान व उनकी लेखनी को बलवान बनाया । खड़ी बोली की आधारशिला पर इन्होंने राष्ट्र से सम्बन्धित काव्य में शब्द-चयन में सजगता दिखाई है । `हिमतरंगिनी` में एक प्रयोग भाषा के स्तर पर यह भी हुआ है कि अंग्रेजी के शब्द जैसे `डेमिल` भी शामिल किया गया है । कुछ नए गढ़े शब्द - किल्लीलेपन , मुंहजोरियां, गरबीले आदि शब्दों का प्रयोग भी कवि की विशिष्टता है । कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी गया है, जैसे - कूआ (कुआं), दूखता (दुखता), हिरदे या हिये (हृदय) आदि । कहीं-कहीं एक ही शब्द के दो रूपों का प्रयोग हुआ है - यशोदा -

---

25. हिमतरंगिनी, पृ0 54

जशोदा, उषा - ऊषा, पहिचान - पहचान, इक - एक, दिवाना - दीवाना, यमुना - जमुना आदि कुछ ऐसे ही शब्द हैं ।

कवि द्वारा प्रयोग में लाए गए कुछ कठिन अप्रचलित-अनूठे शब्द भी हैं, यथा - कसाला, छिया-छी, कंज आदि । इसके अतिरिक्त कवि द्वारा एक ही शब्द के दो-बार प्रयोग काफी मधुर और गीतात्मक बन पड़े हैं - धक - धक, गगन - गगन, घुल - घुल, झलक - झलक, डाल- डाल, चरण - चरण, बदल - बदल, लपेट - लपेट, झांक - झांक, बिखर - बिखर, कन - कन, उमग - उमग, लहर - लहर, श्यामल - श्यामल, आज मिलोगे - आज मिलोगे, झनझन, फलफल, कलकल, रक्त - रक्त, बिन्दु-बिन्दु, कोटि-कोटि, आग-आग, प्राण-प्राण, एक बिरिया, एक बिरिया, घिर-घिर, मनका-मनका, सिसक-सिसक, सौ-सौ, मर-मर, बन-बन भर-भर, डाली-डाली, देख-देख, हंस-हंस, फूल-फूल, रोते-रोते, बरस-बरस, दीवानी-दीवानी, हरा -हरा, आय-आय, मधुर-मधुर, प्रहर-प्रहर, लहर-लहर, बार-बार, गिन-गिन, पानी-पानी, ठान-ठान, एक गीत - एक गीत, पद-पद, वाद-वाद, पन्थ-पन्थ, धीमे-धीमे, कोटि-कोटि, द्वार-द्वार, जोह-जोह, आते-आते, जाते-जाते, घट-घट, धन-धन, जन-जन, तन-तन, मन-मन, हरा-हरा, लाल-लाल, कहां-कहां, कभी-कभी, दूर-दूर, सांस-सांस, फूलों-फूलों, राह-राह, बूंद-बूंद, बंद-बंद, खेल-खेल, ले-ले, लहलह आदि ऐसे ही शब्द हैं ।

इसके अलावा मालतीलाल जी के भाषा-सौन्दर्य में एक सौन्दर्य मुहावरों का है । वे मुहावरे हैं - आखें लाल, जी का पानी डालना आदि । हालांकि उनकी पूरी काव्य-शैली ही मुहावरेदार लगती है । अन्त में यह कहना उचित होगा कि - चतुर्वेदी जी की काव्य-भाषा में किन्हीं विशेष शब्दों का बार-बार प्रयोग उनकी शब्दप्रियता को प्रमाणित करता है । इन शब्दों में बलि, जवानी, प्रणय और मरण-त्योहार के साथ

ही माटी, मातृ-भूमि, राष्ट्र, राजा, मोहन, प्रियतम, सूफ़, समर्पण आदि अनेक हैं । डा० राम खिलावन तिवारी के शब्दों में -'माखनलाल जी के काव्य में राष्ट्रीयता, प्रेम और रहस्य की जो त्रिवेणी बहती है - ये शब्द उसी ओर इंगित करते हैं । रहा 'सूफ़' शब्द का तो यह कवि का अपना 'पेटेन्ट' शब्द है । यह कवि की कल्पना प्रवणता का परिचायक है ।'[26]

गीति तत्व

मन के भावों से निकली स्वर लहरियां जब नाद और लय पा जाती हैं तो शब्दों में गीतात्मकता आ जाती है । इन्हीं संगीतात्मक शब्दों के संयोजन को गीति काव्य कहा जा सकता है । वस्तुत: आत्माभिव्यक्ति, भावात्मकता, संगीतात्मकता (नाद और लय के साथ) संक्षिप्तता आदि गीति काव्य के लक्ष्य करते हैं । गीतिकाव्य भी कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे - प्रेमगीति, रहस्य-परक गीति, प्रकृति गीति, राष्ट्रीय गीति, भक्ति या विनय-गीति, वैचारिक या दार्शनिक गीति । गीतों की बाहरी बुनावट के दृष्टिकोण से और भी प्रकार होते हैं । जैसे - सानेट - चतुर्दशपदी, ओड - सम्बोधन गीति, सांग - गीत, स्लेजी - शोक गीति, बैलेड - वीर गीति उर्दू शैली में गज़ल, रुबाई आदि भी इसी गीति तत्व के अन्तर्गत ही आती हैं ।

आत्माभिव्यक्ति में प्राय: प्रेम गीत आते हैं । वो भी करुणा व्यक्त करने में मार्मिकता का अधिक सहारा लेते हैं । 'हिमतरंगिनी' में आत्माभिव्यक्ति के अन्तर्गत जो गीत आते हैं, वे हैं -'जो न बन पाई तुम्हारे गीत की कोमल कड़ी,' या फिर 'भाई छेड़ो नहीं मुझे' । चूंकि

---

26. सुरेन्द्र यादव - माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता, पृ० 101

गीतिकाव्य अन्तश्चेतना की ध्वनि है तथा भावावेश में डूबे कवि हृदय की अतल गहराईयों से यह छन कर आती है । यहां भावों की तरलता होती है । इसी प्रकार कवि के नितान्त एकान्त क्षणों की भावात्मकता में से भी गीति काव्य का उदय होता है - ऐसे ही एकान्त क्षणों में कवि - `वे तुम्हारे बोल, वह तुम्हारा प्यार` जैसे गीत की सर्जना करता है । यह मार्मिकता से भरपूर है ।

जहां उमड़ते-घुमड़ते भावों को एक बिन्दु पर लय के साथ शब्दों में समेट दी गई, वहां यह गीत उभर आती है -- `आज नयन के बंगले में सखि` या `यह अमर निशानी किसकी है ?`

गीतिकाव्य का मुख्य लक्षण ही गेयता है तथा उसमें नाद-लय का समाहार आवश्यक है । इस तरह के सम्पूर्ण संगीतात्मक गीत जो `झिलमिल तरंगिनी` में हैं, वे हैं `चलो क्रिया-ही हो अन्तर में ।`

कहीं-कहीं तीव्र भावों का संक्षिप्त वर्णन ही गीतिकाव्य का जन्मदाता हो उठता है । अर्थात् वहां विवरण नहीं होते हैं, भावों की तीव्रता के कारण ही उसमें गेयता आती है -`वह टूटा जी जैसा तारा`, `यह चरण ध्वनि धीमे धीमे ` जैसे गीत इस तथ्य को उजागर करते हैं ।

प्रकृति-गीति के अन्तर्गत `नाद की प्यालियों, मौदकी ले सुरा` तथा `ऊषा के संग, पहिन अरुणिमा, मेरी सूरत बावली बोली` आदि गीत आएंगे ।

राष्ट्रीय-गीति में निम्नलिखित गीत अच्छे उदाहरण बन पड़े हैं -- `पत्थर के फर्श, कगारों में ` और `मन धक-धक की माला गूथे ` आदि ।

रहस्यपरक गीति के अच्छे उदाहरण हैं - `कौन याद की प्याली में, बिछुड़ा घोलता-सा क्यों है ? या `जिस ओर देखूं बस`, `पुतलियों में कौन ?` आदि ।

भक्ति या क्रिय गीति के अन्तर्गत `हिम तरंगिनी` के बहुत से गीत आते हैं । जैसे - तुही है बहकते हुओं का इशारा`, `आ मेरी आंखों की पुतली`, `माधव दिवाने हाव-भाव पै बिकाने`, `बोल तो किसके लिए मैं ?` `जिस ओर देखूं बस अड़ी हो तेरी सूरत सामने आदि ।

वैचारिक या दार्शनिक गीति के अन्तर्गत सजल गान, सजल तान, `अपना आप हिसाब लगाया` जैसी सशक्त गीति आएगी । सम्बोधन गीति के अन्तर्गत -`मचल मत दूर-दूर ओ मानी`। तथा `उठ अब ऐ मेरे महा-प्राण ।` जैसे गीत ही आएंगे ।

शोक गीतों के लिए `हिमतरंगिनी` प्रसिद्ध है । इसके अन्तर्गत - `भाई छेड़ो नहीं, मुझे खुल कर रोने दो` तथा `हां, याद तुम्हारी आती थी`, `वे तुम्हारे बोल`, `कौनयाद की प्याली में ` आदि गीत आते हैं ।

गीति तत्व के अन्तर्गत ही मुक्तक काव्य की भी गिनती की जाएगी। हालांकि इसमें गेयता का नितान्त अभाव रहता है । मुक्तक काव्य के अन्तर्गत भी भक्ति, रहस्य, ार आदि श्रेणियां आती हैं । मुक्तक काव्य के भक्ति श्रेणी में जो कविताएं आती हैं, वे हैं - गो-गण संभाले नहीं जाते नाथ । `दुर्गम हृदयारण्य, दण्डकारण्य घूम जा, आ जा` आदि ।

शृंगार प्रधान मुक्तक केअन्तर्गत -`मैंने देखा था, कलिका के ` या `चल पड़ी चुपचाप सन-सन-सन हुआ ` आदि । रहस्यवादी मुक्तक का सुन्दर नमूना है - `युगों की पहुंच के`, `हरा-हरा कर, हरा - / हरा कर देने वाले सपने ` आदि ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि `हिमतरंगिनी` की अधिकांश कविताएं

गेय हैं । उसी काव्य-संग्रह की भूमिका में स्वयं माखनलाल जी ने इन काव्यों का सम्बोधन बार-बार गीत कह कर किया है । `पूजागीत` कहे जाने की उम्मीदवार तुकबंदियां आदि सम्बोधन दिया है - इन कविताओं को कवि ने । `ये गीत पूजा रहे नहीं` जैसे वाक्यांश भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि कवि की दृष्टि पूजा या प्रेम नाम भले ही न दे इन काव्यों को, पर अपनी कविताओं को बार-बार गीत कहने पर ही जोर दे रहा है ।

खैर । रामेश्वर शुक्ल अंचल ने भी हमारे कवि माखनलाल जी की गीतात्मकता को अपने शब्दों में पुष्टि की है -`माखनलाल जी की कविताओं में एक मधुर अंत:संगीत है जो अपने आप उठता है । उनके शब्दों का चयन ध्वनि केविशेष वातावरण को लेकर चलता है । शब्दों के साथ भाव और उन शब्दों से उत्पन्न ध्वनि जैसे एक-दूसरे के पूरक हो जाते हैं । शैली की ऐसी विशेषता जिसमें राजनीति की ही प्रधानता दी गई हो, पर फिर भी जिससे उग्र राष्ट्रीय चेतना की प्रभा फूट पड़ती हो, उनकी कविता में मिलती है । राष्ट्र के प्रति अशेष आत्मार्पण और एकोपासना का भाव उनमें है जो कड़ी-कड़ी, छंद-छंद में बोलता है । काव्य वस्तु और अभिव्यक्ति प्रकार के बीच एक सुखद सामंजस्य स्थापित कर उन्होंने भावों का ऐसा तीव्र धारा प्रवाह दिया जो कविता को वर्ण-वर्ण के रंगों और रूपों से भरता चला गया । अनुभूति की जीवित वास्तविकता आई जिसके पैर शून्य में नहीं, पृथ्वी की मिट्टी पर हों और जो पराधीनता के संताप से नीला हो ।`[27]

इस प्रकार हमने `हिमतरंगिनी` की काव्य-कला पर, तर्कसंगत विचार करने की कोशिश की है ।

---

27. रामेश्वर शुक्ल अंचल -`एक भारतीय आत्मा, राष्ट्रीय काव्यपुरुष` लेख सं0 गगनांचल, पृ0 22-23, वर्ष 14। अंक 1, 1991
संपादक - गिरिजाकुमार माथुर

उपसंहार

माखनलाल चतुर्वेदी कृत `हिमतरंगिनी` का आलोचनात्मक अध्ययन करने की जो कोशिश मैंने शुरू की, उसे अंत तक शत-प्रतिशत सम्भवत: निबाह नहीं पायी । माखनलाल जी के पूजागीत (भक्तिपरक कविताएं) अलग से एक खास विश्लेषण की मांग करते हैं ।इस लघु शोध-प्रबन्ध में इन पूजा गीतों पर एक और अलग अध्याय बना पाना मेरे लिए सम्भव न था । हालांकि लगभग हर अध्याय में इन्हें एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने की कोशिश की गई है, परन्तु मेरी ये कोशिश विवरण से मात्र थोड़ी ही अधिक विशिष्टता पा सकने को विवश है । कई निर्धारित सीमाओं के कारण मैं अपनी कोशिश को सही अन्ज़ाम व सही दिशा न दे पायी । हां, इतना अवश्य हुआ कि मैं अपने लक्ष्य तक पहुंचने वाली दिशा में लगातार कोशिश करती रही कि भटकूं नहीं । जिस डगर पर चली हूं, उसमें कई मोड़, कई घुमाव, उतार-चढ़ाव आएंगे ; यह तयशुदा बात जानते हुए मेरी कोशिश यही रही कि कहीं-कोई दिशा-भ्रम न हो ।

माखनलाल जी की कविताओं को जितनी बार गहराई से पढ़ने-समझने लगी, उतनी बार चकित और ठगी-सी रह गई मैं । इसका एकमात्र कारण हो ही नहीं सकता । कई कारण रहना स्वाभाविक था । प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी की तरह यह बार-बार पढ़ने को नहीं मिले थे । जहां तक मुझे याद है - बचपन से लेकर अब तक की पाठ्य पुस्तकों में मैंने `पुष्प की अभिलाषा` तथा `कैदी और कोकिला` यही दो कविताएं पढ़ी थीं । कवि की दो ही महत्वपूर्ण कविताएं मेरी जिज्ञासा यूं जगा गयीं कि मैं सोचने को विवश हो गयी कि इतने महत्वपूर्ण कवि के दस काव्य-संग्रहों की सैंकड़ों कविताओं में ऐसा कुछ भी नहीं जो प्रसाद, निराला आदि कवियों की कविताओं की तरह हमारे प्रत्येक वर्ष के पाठ्यक्रम में जुड़ सके ? इनके निबन्ध, कहानियां, संस्मरण आदि इनके रचना संसार की अन्य विधाओं को न तो उजागर होने का मौका मिला, न तो वो महत्ता दी गयी कि ये पाठ्यक्रम का अंश बनती रहें । ये सवाल मुझे सालते रहे, कचोटते रहे और

मैंने निश्चय किया कि इनके रचना-संसार की गहराई में जाकर देखती हूं । और, इस तरह साहित्य अकादमी, पद्मभूषण आदि सम्मान से सम्मानित कवि की रचनाओं की बारीकियों को समझने के प्रयास में 'हिमतरंगिनी' पर ही शोध करने का निर्णय मैंने लिया । इनकी रचनाओं की विशिष्टता-उत्कृष्टता देखते हुए प्रसिद्धि का कम मिलना साहित्य-जगत और बड़े-बड़े आलोचकों से कई सवाल करते हैं और करेंगे ।

इनकी जो कविताएं बाहर से जितनी सरल बुनावट में दिखीं, उस के भावार्थ गूढ़ से गूढ़तर होते गए मेरे लिए । सचमुच, इनमें से क्या-क्या चुन लूं, क्या ढूंढ़ लूं, खोई सी - ठगी सी मैं भुलावा या छलावा में भी आ जाती थी । कभी-कभी झुंझला उठती थी मैं अपने-आप पर कि इन कविताओं की एक डोर समझ-बूझ कर जब थामती हूं तो दूसरी छोर कहां खो जाती है ? सच । जितना महान् व गम्भीर कवि व्यक्तित्व उतनी ही महान् व गम्भीर प्रकृति की कविताएं समझने-बूझने को अभी बहुत कुछ छूट गया, बहुत सी जानकारियां बाकी रह गयीं । कवि के इतने शेड्स देखने को मिले कि उन विभिन्न शेड्स वाले व्यक्तित्व के साथ विभिन्न गीतों के मूड व लहजे को एकाकार कर देना इतना आसान न था । कभी तो कवि 'गो-गण संभाले नहीं जाते मतवाले नाथ' जैसे मुक्तक गीत में बाल रूप में बुजुर्गियत ढोते-सम्भालते हुए वस्तुस्थिति-परिस्थिति से अवगत कराता है, कभी देशभक्ति में आकण्ठ डूबा पत्थर, फर्श, कुंडी, ताले, कष्ट सहीले वीरों में आराध्य को पा साहस बटोरने वाला गर्वीला साहसी-युवक बन जाता है । कभी तो प्रकृति, आराध्य सब में दार्शनिक अन्दाज भर कर रहस्य का पुट भर कर संत, भक्त, ज्ञानी बन जाता है, तो कभी 'मार डालना किन्तु क्षेत्र में जरा खड़ा रह लेने दो' कहते हुए थका-हारा, खोया, बेबस युवक बन जाता है । कभी तो मानो-मनुहारों में डूबा शृंगार परक चंचल बातें कहता है और कभी विधुर त्रासदी को पा 'मुझे सुलकर

रोने दो' जैसी विवश-करुण आर्तनाद करता हुआ, विरह-वियोग झेलता हुआ पेड़ से छूटे पतझड़ के पत्तों के समान कहीं दूर हो जाना चाहता है । फिर अचानक कभी उग्र रूप धर कर आराध्य से प्रश्न करते हुए उन्हें धिक्कारता है और वही उग्र साहस गरीबों, शोषितों, परतन्त्र नागरिकों और भारत मां के लिए न्यौछावर कर देना चाहता है । इन विविध रूपों में अपनी गरिमामयी पहचान को कभी-कहीं स्खलित नहीं होने दिया हमारे कवि ने । कभी गंजाला नदी के किनारे बैठा बालकनुमा कवि कोई गीत लिखता है तो कभी जेल के सींखचों के भीतर कैदी बन कर, कभी वृन्दावन सम्मेलन, कभी त्रिपुरी कैम्प या सत्यनारायण कुटीर में कोई गीत लिखता है तो कभी पत्नी के स्वर्गवास-दिवस पर ।

जो कवि-व्यक्तित्व कभी परिस्थितियों के वश में न रहा, बल्कि परिस्थितियों को अपने वश में करके जिया, उस कवि की कविताएं भी लगभग इसी प्रकृति की निकलीं । कभी किसी वाद में बंध कर नहीं आईं, बल्कि स्वच्छंद रहकर अपने-आप में कई वादों को समेटे हुए आईं । कभी-कभी इन की एक ही कविता में एक साथ कई वाद समाए हुए मिल जाते हैं ।

इनके काव्य-सौन्दर्य व भाषा शैली पर और गहराई से विचार करना एक छात्र के लिए थोड़ी मुश्किल जरूर है, पर असम्भव नहीं था । शायद इसके कई पहलू मुझ से छूट गए, कई पहलू मेरे लिए सम्भव न थे ।

'हिमतरंगिनी' की महत्ता मेरी नजर में तब और भी ज्यादा बढ़ गई, जब मैंने इसे युगीन सन्दर्भों से जुड़ा हुआ पाया । इनके पूजा गीत मध्यकाल के भक्ति गीत नहीं थे, बल्कि जूठे बेर खाकर छुआछूत का फासला मिटा देने के पक्षधर थे । इनकी भक्ति में फटी बिन्धियां पहने भूखे-भिखारी भी आते हैं, जंजीर, बंदी, कुंडी, कड़ियां, पूजा-अर्चना की सामग्री

की भांति आते गए हैं । मज़हब, रण, काली मर्दन, रक्त-स्नान, गोली की हुंकारों, सीत्कारों, ज्वार, बलि का उभार आदि शब्द अनायास नहीं आए थे, और ना ही कोरी कल्पना से उपजे थे । काव्य की एक अलग शैली और भाषा की अलग शैली विकसित करते हुए हमारे कवि `भावों में कवि, दावों में योद्धा` थे ।

प्रो० श्रीकान्त जोशी के शब्दों में -`मासनलाल जी के लिए उनका प्रभु ऐसी अलौकिकता नहीं था, जिसका आसन सुदूर आकाशों के भीतर कहीं छुपा हुआ हो । उनका आराध्य तो ग्वाला है, गोकुल का ग्वाला कृष्ण, जो भूमि पर अवतार लेता है और मनुष्य की क्षमताओं के माप दण्डों की स्थापना करता है । वह तो`दीनबन्धु` है, उसका वास्तविक स्वरूप छुपने वाला नहीं है ।` (श्रीकान्त जोशी - मासनलाल चतुर्वेदी, पृ० 64)

इनकी कृतियों को वो प्रसिद्धि दिलाने की अभिलाषा से मैं यह लघु शोध लिख कर एक कड़ी जोड़ना चाहती थी, जो इन्हें मिलनी चाहिए थी, पर मिली नहीं । किन्तु, अभी सफलता मुझ से दूर खड़ी है। आशा है भविष्य में उसे पूरी करने जैसी उम्मीदों को सजग रखूंगी ।

—

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. चतुर्वेदी, माखनलाल : `हिमतरंगिनी`,
   भारती भण्डार, प्रयाग, 1949

सहायक ग्रन्थ

1. चौरे जगदीशचन्द्र : `माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का अनुशीलन`
   सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972

2. चन्द्रा, विपिन : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष : हिन्दी माध्यम
   कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्व-
   विद्यालय, 1990

3. जोशी, श्रीकान्त : माखनलाल चतुर्वेदी
   साहित्य अकादमी प्रकाशन, 1989

4. टंडन, प्रेमनारायण : (सं0) माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
   नन्दन प्रकाशन, लखनऊ, 1970

5. नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएं
   राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1993

6. तिवारी, नित्यानंद : साहित्य का स्वरूप
   एन.सी.आर.टी., नईदिल्ली, 1996

7. प्रसाद, जयशंकरप्रसाद : चन्द्रगुप्त
   किताब किंग, पटना

8. महाले सुभाष : माखनलाल चतुर्वेदी और वि. दा. सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना`, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, 1997

9. यादव सुरेन्द्र : माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता` प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1979

10. वनजा के. : माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में मानव मूल्यों की अवधारणा
सूर्य भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1995

11. वर्मा महादेवी : `दीपशिखा` (काव्य संग्रह)
भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, आठवां संस्करण

12. वर्मा, धीरेन्द्र (प्रधान) : हिन्दी साहित्य कोश , भाग 1 व 2
वर्मा ब्रजेश्वर, चतुर्वेदी ज्ञानमंडललि०, वाराणसी, 1986
रामस्वरूप, रघुवंश (सं०)

13. सरकार, सुमित : आधुनिक भारत
राजकमल प्रकाशन, 1992

14. सिंह, केदारनाथ : मेरे समय के शब्द
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993

15. सिंह, चन्द्रभानु प्रसाद सिंह : माखनलाल चतुर्वेदी और स्वाधीनता आन्दोलन

16. सिंह, नामवर : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998

17. सिंह, नामवर : `छायावाद`
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993

18. सिंह,रामधारी `दिनकर` : मिट्टी की ओर
उदयाचल प्रकाशन, पटना, 1973

19. शंभुनाथ : दूसरे नवजागरण की ओर
ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली, 1993

20. शर्मा कृष्णदेव : माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1979

21. जोशी, श्रीकान्त (सं0) : माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, दस खंड,
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1983

पत्रिका एवं लेख

1. गगनांचल (माखनलाल चतुर्वेदी विशेषांक)
सम्पादक - गिरिजाकुमार माथुर

2. अग्निहोत्री प्रभुदयाल : `हिमतरंगिनी : आराध्य की न्यौता`

3. जोशी, श्रीकांत : `हिमतरंगिनी : एक अवलोकन`